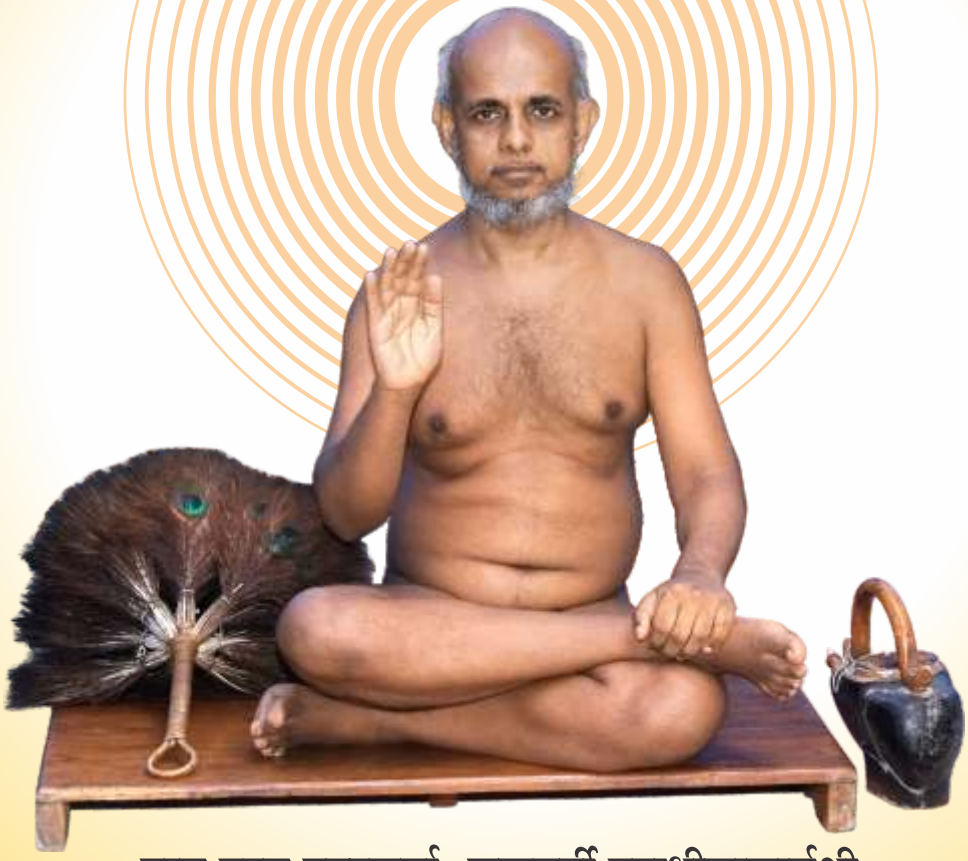

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

प्राकृत कथा साहित्य परिशीलन

लेखक
डॉक्टर प्रेमसुमन जैन

प्रकाशक
संघी प्रकाशन
जयपुर (राजस्थान)

(परम्परानायक)

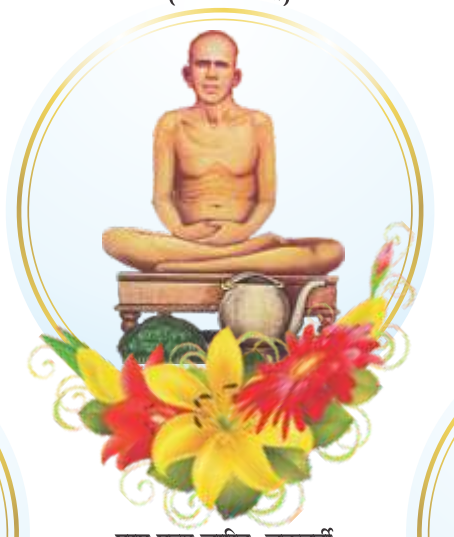

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

प्राकृत कथा साहित्य परिशीलन

डॉ. प्रेमसुमन जैन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम ग्रन्थों के, धर्म-दर्शन के शास्वत सत्यों को विभिन्न रूपकों, दृष्टान्तों एवं कथाओं के माध्यम जन-जीवन तक पहुँचाना, प्राकृत साहित्यकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। प्राकृत की विभिन्न कथाएं पाठक को आनन्दित तो करती ही हैं, उसके जीवन को आलोकित भी करती हैं। उसे भारत की सांस्कृतिक सम्पदा से परिचित कराती हैं। प्राकृत कथा-साहित्य के स्वरूप, उसके प्रतिपाद्य एवं आधुनिक जीवन में तारतम्य को शोधपूर्ण किन्तु ललित शैली में उपस्थित किया गया है प्रस्तुत पुस्तक में।

'प्राकृत कथा-साहित्य परिशीलन' नामक प्रस्तुत कृति डॉ. प्रेम सुमन जैन द्वारा प्रणीत विभिन्न शोधपूर्ण एवं चिन्तनप्रधान साहित्यिक लेखों का एक गुलदस्ता है, जिसकी महक पाठक को प्राकृत साहित्य की सरस कथाओं के प्रमुख अभिप्रायों से परिचित कराती है। यह पुस्तक द्वितीय पुष्प है लेखक के प्रस्तावित ग्रन्थ चतुष्टय गुच्छक का, जो शीघ्र प्रकाश्य है।

मूल्य : 95.00

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत कथा-साहित्य परिशीलन

डॉ. प्रेम सुमन जैन
सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

संघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक : विजेन्द्रकुमार संघी
संघी प्रकाशन
सी-177, महावीर मार्ग,
मालवीय नगर,
जयपुर- 302 017

शाखा 255, बापू बाजार
उदयपुर- 313 001

मूल्य : पिचानवे रुपये

संघी प्रकाशन, जयपुर-उदयपुर द्वारा प्रकाशित/प्रथम संस्करण 199[illegible]
सर्वाधिकार - लेखकाधीन/ ग्राफिक ऑफसेट प्रिन्टर्स जयपुर में मुद्रित।

Prakrit Katha-Sahitya Parisheelana
By Dr. Prem Suman Jain

Rs. 95.00

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राथमिकी

भारतीय साहित्य विभिन्न भाषाओं में समृद्ध हुआ है। प्राकृत साहित्य का इस समृद्धि में अपूर्व योगदान है। प्राकृत साहित्य अपनी कथाओं के लिए विश्व में प्रसिद्ध है। आगम ग्रन्थों के धर्म-दर्शन के शाश्वत सत्यों को विभिन्न रूपकों, दृष्टान्तों एवं कथाओं के माध्यम जन-जीवन तक पहुँचना प्राकृत साहित्यकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। ये प्राकृत कथाएं केवल मानव पात्रों के सहारे नहीं, अपितु, पशु-पक्षी पात्रों के माध्यम भी अपने विकास को प्राप्त हुई हैं। आगम की संक्षिप्त कथाएं, व्याख्या साहित्य की लोक कथाएं और स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थों की सरस और मनोरम कथाएं पाठक को आनंदित तो करती ही हैं, उसके जीवन को आलोकित भी करती हैं। उसे भारत की सांस्कृतिक सम्पदा से परिचित कराती हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का सही अर्थ इन कथाओं के माध्यम से जाना जा सकता है।

प्राकृत कथा-साहित्य का धरातल अहिंसा-मय जीवन और भेद-भाव रहित दृष्टिकोण रहा है। इसलिए यह साहित्य हिंसा, आतंक और अनाचार जैसे व्यसनों की उत्पत्ति के मूल कारणों पर प्रकाश भी डालता है और इस ओर भी इंगित करता है कि सदाचार, अहिंसा, अभय की प्रतिष्ठा किये बिना संस्कृति का कोई विकास स्थायी नहीं हो सकता। ऐसे चिन्तनप्रधान प्राकृत कथा-साहित्य पर हमने जो विगत वर्षों में लिखा था, प्रकाशित किया था उस सबको व्यवस्थित रूप में इन ललित निबन्धों में बहु-जन हिताय पुनः संयोजित किया है। पुस्तक रूप में पहली बार प्रकाशित शोधपूर्ण लेखों का यह गुलदस्ता प्राकृत कथाओं की सदाचार और सरसता की सुगन्ध को विश्व-व्यापी बनायेगा, ऐसा विश्वास है। पुस्तक के प्रकाशक श्री विजेन्द्र संघी और प्रकाशन-सहयोगी श्री टाया चेरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर के इस साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रकाशन सहयोग के लिए आभार।

अक्षय तृतीया, 1991 **- प्रेम सुमन जैन**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सादर समर्पित

स्व. माता श्रीमती भागवती देवी जैन

एवम्

स्व. ससुर श्रीमान् गुलाबचन्द जैन

को

जिनसे कथाएं सुनने, पढ़ने, लिखने की प्रारम्भिक प्रेरणा मिली थी।

- प्रेम सुमन जैन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन-सहयोगी संस्था

श्री शिवलाल मोहनलाल टाया चेरिटेबल ट्रस्ट

50, अशोकनगर, टाया भवन, उदयपुर- 313 001

स्थापना:

इस ट्रस्ट की स्थापना 9 अप्रेल 1980 में श्री कन्हैयालाल टाया एवं उनके परिवार ने की थी। शिक्षा, चिकित्सा एवं साहित्य प्रकाशन में सहयोगी यह ट्रस्ट देवस्थान विभाग में रजिस्टर्ड एवं आय हेतु करमुक्त है।

उद्देश्य एवं प्रवृत्तियां:

* होनहार, मेधावी एवं जरूरतमंद विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा में छात्रवृत्ति आदि प्रदान कर सहयोग करना।
* शिक्षा, साहित्य एवं संस्कृति के संरक्षण, विकास एवं प्रकाशन के कार्यों में सहयोग करना।
* समाज के निराश्रित, जरूरतमंद रोगियों की चिकित्सा की यथासम्भव व्यवस्था कर उन्हें औषधि आदि उपलब्ध कराना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ट्रस्ट निम्न प्रवृत्तियों का संचालन करता है-

1. प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्व पर बालकों एवं महिलाओं की शैक्षणिक प्रतियोगिता आयोजित कर उन्हें पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। मेधावी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है। जैन विद्या पढ़ने वालों एवं शोधकर्त्ताओं के लिए एक बुक-बैंक का संचालन किया जाता है।
2. श्री महावीर-धर्मार्थ दवाखाना, 303, अशोक नगर, उदयपुर में चिकित्सा-जांच एवं औषधि-सुविधा निःशुल्क प्रदान की जाती है। प्रतिवर्ष निःशुल्क नेत्र-चिकित्सा शिविर लगाया जाता है।
3. समाज के निराश्रित जरूरतमंदों को आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है।

प्रस्तुत 'प्राकृत कथा-साहित्य परिशीलन' पुस्तक के प्रकाशन में आंशिक अनुदान प्रदान कर देश के प्राचीन साहित्य के प्रचार-प्रसार में सहयोग किया गया है। आशा है, पाठकगण इस प्रकाशन से प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

- व्यवस्थापक

झमकलाल टाया

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

1.	आगम कथा साहित्य	1
2.	कथानक तरह-तरह के	11
3.	कथाओं में सांस्कृतिक धरोहर	27
4.	प्राकृत कथाओं के भेद-प्रभेद	37
5.	आचारांग व्याख्याओं की कथाएँ	42
6.	हरिभद्रसूरि की प्रतीक कथाएँ	57
7.	कथाओं में अहिंसा दृष्टि	63
8.	आरामसोहाकहा (पद्य)- परिचय	70
9.	कथा णेमिणाहचरिउ की	77
0.	प्राकृत साहित्य में बाहुबली कथा	83
1.	पालि-प्राकृत कथाओं के अभिप्राय	88
2.	धर्मपरीक्षा अभिप्राय की परम्परा	103
3.	मधुबिन्दु - अभिप्राय का विकास	108

***

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम

आगम कथा साहित्य

आगम परिचय :

प्राकृत भाषा में जो साहित्य लिखा गया है, उसमें आगम साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा में भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट शिक्षाओं के लिए आगम शब्द अधिक प्रचलित हो गया है, जिसे प्राचीन काल में श्रुत अथवा सम्यक्श्रुत कहा जाता था। आप्तवचन, प्रवचन, जिनवचन, उपदेश आदि अनेक शब्द आगम के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[1] महावीर के उपदेश तत्कालीन लोक भाषा अर्धमागधी में प्रचलित हुए थे। अतः आगमों की भाषा भी प्रमुख रूप से अर्धमागधी है।[2] महावीर से उनके शिष्य गणधरों ने जैसा सुना था, उस अर्थ को अपने शब्दों में निबद्ध कर दिया था। फिर उस शब्द एवं अर्थरूप उपदेश को अपने शिष्यों को सुना दिया था। इस प्रकार श्रुत परम्परा से महावीर के उपदेशों को आगम के रूप में सुरक्षित रक्षा गया है। वर्तमान में उपलब्ध आगमों में केवल महावीर के ही शब्द नहीं हैं, अपितु उनमें गणधरों और उनके शिष्यों का प्रस्तुतीकरण भी सम्मिलित है। फिर भी आगमों की विषय वस्तु के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आगमों के मूल रूप में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। आगम वर्तमान युग को महावीर की वाणी से जोड़ने में सेतु का काम करते हैं।

आगमों के संकलन में एवं उनको सुनिश्चित स्वरूप प्राप्त करने में लगभग 1000 वर्षों का समय लगा है।[3] इस सम्बन्ध में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर के निर्वाण के दो सौ वर्ष बाद श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। वे महावीर के समस्त श्रुतज्ञान के अंतिम उत्तराधिकारी थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भीषण अकाल के कारण मुनियों का संघ अव्यवस्थित हो गया। अतः देश-काल की परिस्थिति के कारण महावीर द्वारा कथित आगमों का ज्ञान क्रमशः क्षीण हो गया। वीर-निर्वाण के 683 वर्ष पश्चात् बारहवें अंग दृष्टिवाद आगम का कुछ अंश ही शेष रह गया था। उसी के आधार पर धरसेन आचार्य के तत्वावधान में षट्खण्डागम और गुणधर आचार्य के तत्वावधान में कषायपाहुड नामक आगम सूत्र-ग्रन्थ लिखे गये।[4] इन ग्रन्थों की भाषा शौरसैनी प्राकृत है। आगे चलकर इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर आचार्य कुन्दकुन्द आदि दिगम्बर परम्परा के आचार्यों ने जैन दर्शन के स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों को शौरसैनी आगम कहा जाता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर के उपदेशों को मूल रूप से सुरक्षित रखने के लिए जैन मुनियों ने अनेक वाचनाएँ की हैं। महावीर के निर्वाण के 160 वर्ष बाद पाटलिपुत्र में स्थूलभद्र आचार्य के स्मरण के आधार पर ग्यारह आगमों का संकलन किया गया। किन्तु वहाँ उपस्थित आचार्यों को बारहवें ग्रन्थ दृष्टिवाद का स्मरण न होने से उसका स्वरूप संकलित नहीं किया जा सका। इस प्रथम वाचना में व्यवस्थित आगम साहित्य जब पुनः

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

छिन्न-भिन्न होने लगा तब वीर-निर्वाण के 827-840 वर्ष के बीच में आचार्य स्कंदिल ने मथुरा में मुनिसंघ का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें उन्हीं ग्यारह आगमों को पुनः व्यवस्थित किया गया। वीर-निर्वाण 980 वर्ष में वल्लभी नगर में देवर्द्धिगणी की अध्यक्षता में एक मुनि-सम्मेलन पुनः बुलाया गया। इस सम्मेलन में विभिन्न वाचनाओं का समन्वय करके आगमों को पहली बार लिपिबद्ध किया गया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान में उपलब्ध अर्धमागधी आगम इसी सम्मेलन के प्रयत्नों का परिणाम है।[5] इस समय तक ग्यारह प्रमुख अंग ग्रन्थों के अतिरिक्त आगम साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी संकलित किये गये थे। कुल आगमों की संख्या 45 तय की गयी थी। इस तरह मोटे तौर पर तो आगमों का रचनाकाल महावीर का समय है। किन्तु उनका लेखन-काल ईसा की 4-5वीं शताब्दी है। इस एक हजार वर्ष के अन्तराल की संस्कृति आगमों में समायी हुई है।[6]

अर्धमागधी आगम साहित्य को कई भागों में विभक्त किया गया है। अंग ग्रन्थ 11 हैं, जिनमें आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र आदि हैं। 12 उपांग ग्रन्थ हैं- औपपातिकसूत्र, राजप्रश्नीय आदि। छेद-सूत्र 6 हैं- निशीथसूत्र, आवश्यकसूत्र आदि। मूल सूत्र 4 हैं- उत्तराध्ययनसूत्र, दशवैकालिकसूत्र आदि। तथा 10 प्रकीर्णक और 2 चूलिका ग्रन्थ हैं। आगम ग्रन्थों का यह विभाजन एक ही समय में निश्चित नहीं हुआ है, अपितु ईसा की 5वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक विषयवस्तु के अनुसार यह विभाजन होता रहा है। किन्तु आगम साहित्य का प्रमुख विषयों की दृष्टि से अनुयोगों में भी विभाजन हुआ है। यह विभाजन प्राचीन है। आर्यरक्षितसूरि ने आगम-साहित्य के जो चार भाग किये हैं वे इस प्रकार हैं:-[7]

1. चरणकरणानुयोग - आचार, व्रत, चरित्र, संयम आदि का विवेचन।
2. धर्मकथानुयोग - धर्म को प्ररूपित करने वाली कथाओं का विवेचन।
3. गणितानुयोग - गणित सम्बन्धी विषयों का विवेचन।
4. द्रव्यानुयोग - छह द्रव्यों एवं नौ पदार्थों का विवेचन।

दिगम्बर परम्परा में आगम साहित्य के अनुयोगों के नाम कुछ भिन्न हैं।[8] यथा-

1. प्रथमानुयोग - महापुरुषों के जीवन चरित्र आदि।
2. करणानुयोग - लोक का स्वरूप एवं गणित आदि।
3. चरणानुयोग - आचारशास्त्र का निरूपण।
4. द्रव्यानुयोग - द्रव्य एवं पदार्थों का विवेचन।

आगम-साहित्य की विषयवस्तु का यह मोटा-मोटा विभाजन है क्योंकि करणानुयोग के ग्रन्थों में भी धर्मकथा एवं द्रव्यों का विवेचन मिल जाता है। तथा द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों में भी कुछ दृष्टान्त एवं कथाओं के संकेत प्राप्त होते हैं। फिर भी विषय के अध्ययन के लिए इस विभाजन में सुविधा है। इस वर्गीकरण के आधार पर अर्धमागधी आगम साहित्य के ग्रन्थों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है-

1. **चरणकरणानुयोग** - इसमें आचारांगसूत्र, प्रश्नव्याकरण, दशवैकालिकसूत्र, निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प तथा आवश्यकसूत्र आदि ग्रन्थों को रखा जा सकता है।
2. **धर्मकथानुयोग** - इसमें ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, विपाकसूत्र, औपपातिक, राजप्रश्नीय, निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका तथा उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगम ग्रन्थों को रखा जा सकता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. गणितानुयोग - इसमें जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ हैं।
4. द्रव्यानुयोग - इसमें सूत्रकृतांग, स्थानांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

अनुयोगों में आगम ग्रन्थों का यह विभाजन भी मोटे तौर पर ही है। क्योंकि एक ग्रन्थ में कई विषय पाये जाते हैं।

आगम साहित्य के विषयों को इन चार अनुयागों में विभाजित करने के लिए प्रत्येक आगम का अन्तरंग अध्ययन करने के उपरान्त उसके विषय को इन चार अनुयोगों में विभाजित करना होगा। प्रत्येक ग्रन्थ की विभाजित सामग्री को अलग-अलग अनुयोगों में संकलित करनी होगी तभी आगम-ग्रन्थों की सामग्री का विभाजन अनुयोगों के अनुसार हो सकेगा। आगम साहित्य के मर्मज्ञ मुनि कन्हैयालाल जी "कमल" ने यह महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ गणितानुयोग में आगम साहित्य की गणित सम्बन्धी सभी सामग्री एकत्र कर दी है। इस गणितानुयोग ग्रन्थ का विद्वत्-जगत् में अच्छा आदर हुआ है।

पंडतरत्न मुनि कमल जी ने विगत वर्षों में आगम साहित्य से धर्मकथानुयोग की सामग्री संकलित की है, जिसे उन्होंने "धम्मकहाणुओगो" नाम दिया है। इस संकलन में निम्नांकित आगम ग्रन्थों से सामग्री ली गयी है-

अंग-ग्रन्थ - आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग, स्थानांग समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृत्, उनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र।

उपांग-ग्रन्थ - औपपातिक, राजप्रश्नीय, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावालिका, पुष्पिका, वृष्णिदशा, पुष्पचूलिका।

मूलसूत्र - उत्तराध्ययनसूत्र, नन्दीसूत्र।

छेदसूत्र - दशाश्रुतस्कन्ध, कल्पसूत्र।

इस तरह "धम्मकहाणुओगो" में आगम साहित्य के प्रायः उन सभी ग्रन्थों से सामग्री संकलित कर ली गयी है, जिनमे धर्मकथा विद्यमान हैं। धर्मकथाओं पर विवेचन करने से पूर्व आगम ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

आचारांगसूत्र-

अर्धमागधी आगम साहित्य में अंग ग्रन्थों में आचारांगसूत्र प्रथम अंग ग्रन्थ है। जैन परम्परा की मान्यता एवं आगम-साहित्य के गवेषक विद्वानों की खोज के अनुसार यह प्रायः निश्चित है कि भगवान् महावीर ने सर्वप्रथम आचारांग में सगृहीत विषय का ही उपदेश दिया था। अतः उनकी वाणी इसमें सुरक्षित है। जैन आचारशास्त्र का यह आधारभूत ग्रन्थ है।[10] इसमें प्रकारान्तर से सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र की मूलभूत शिक्षाएँ संकलित हैं। भगवान् महावीर की साधना-पद्धति के ज्ञान के लिए आचारांग सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें अर्धमागधी भाषा के प्राचीन रूप सुरक्षित है। इसकी सूत्रशैली ब्राह्मण ग्रन्थों की सूत्रशैली से मिलती-जुलती है। आचारांगसूत्र के वाक्य कई स्थानों पर परस्पर सम्बन्धित नहीं हैं तथा कुछ पद एवं पद्य उद्धृत अंश जैसे भी प्रतीत होते हैं।[11] इससे विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि आचारांग के पहले भी जैन परम्परा का कोई साहित्य रहा है, जिसे पूर्व-साहित्य के नाम से जाना जाता है।

आचारागसूत्र कथा-साहित्य की दृष्टि से भी उपयोगी है। इसमें ऐसे कई उपमान या रूपक दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्राकृत कथाओं के लिए कथा-बीज हैं। छठवें अध्ययन के प्रथम उद्देशक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में एक कच्छप का उदाहरण दिया गया है।[12] उस कछुए को शैवाल (काई) के बीच में रहने वाले एक छिद्र से चांदनी का सौंदर्य दिखायी दिया। उस मनोहर दृश्य को दिखाने के लिए जब वह कछुआ अपने साथियों को बुलाकर लाया तो उसे वह छिद्र ही नहीं मिला, जिसमें से चांदनी दिख रही थी। यह रूपक आत्मज्ञान के निजी अनुभव के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस रूपक को आचारांग के व्याख्या साहित्य में समझाया गया है।[13] बौद्ध आगमों में भी कच्छप के रूपक के आधार पर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को मनुष्य जन्म की दुर्लभता का उपदेश दिया है।[14] इस रूपक ने परवर्ती प्राकृत कथा-साहित्य को भी अनुप्राणित किया है। गीता में भी "स्थितप्रज्ञ" का स्वरूप कछुए के रूपक द्वारा प्रकट किया गया है।[15]

आचारांग में इसी प्रकार के अन्य रूपक भी खोजे जा सकते हैं। एक स्थान पर कहा गया है कि जैसे बलशाली योद्धा युद्धभूमि में सबसे आगे रहकर शत्रुओं के साथ घमासान युद्ध कर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार साधक को महान् उपसर्ग सहन करते हुए भी आत्म-चिन्तन में अंतिम समय तक स्थिर भाव से लीन रहना चाहिए।[16] इस ग्रन्थ के नवें अध्ययन में महावीर की तपश्चर्या का वर्णन है। महावीर स्वामी का यह चरित्र अपने में कई कथातत्व समेटे हुए है, जिनसे महापुरुषों के चरित्र लिखने का आधार मिला है।

सूत्रकृतांग-

सूत्रकृतांग में जैन दर्शन एवं अन्य दार्शनिक मतों का प्रतिपादन है। अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों की समीक्षा के उपरान्त जैन दर्शन के तत्वों आदि का निरूपण करना इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।[17] छठे अध्ययन में भगवान् महावीर की स्तुति का वर्णन है। इसमें विभिन्न उपमानों का प्रयोग किया है। ऐरावत, सिंह, गंगा, गरुड आदि की तरह महावीर भी लोक में सर्वोत्तम थे।[18] इस तरह की उपमाओं ने कथा नायक के स्वरूप-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है।

इसी सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के छठे एवं सातवें अध्ययनों में आद्रककुमार और गोशालक तथा उदक और गौतम स्वामी के बीच में हुए संवादों का उल्लेख है। इन संवादों ने परवर्ती कथाओं के कथोपकथनों के गठन में सहयोग किया है।

इसी सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में पुण्डरीक का दृष्टान्त दिया हुआ है। आगमिक कथाओं का यह अनुपम उदाहरण है। एक सरोवर जल और कीचड़ से भरा हुआ है। उसके बीच में कई कमल खिले हैं। बीच में एक श्वेत कमल है। चारों दिशाओं से आने वाले मोहित पुरुष उस सफेद कमल को प्राप्त करने के प्रयास में कीचड़ में फंस जाते हैं। किन्तु वीतरागी पुरुष सरोवर के किनारे खड़ा रहकर ही कमल को अपने पास बुला लेता है।[19]

इस रूपक में सरोवर संसार के समान है। उसमें जल कर्मरूप है तथा कीचड़ विषय-भोग का प्रतीक। साधारण कमल जनपद के प्रतीक हैं और श्वेत कमल राजा का। चारों मोहित पुरुष चार मतवादी हैं और वीतरागी श्रमण सद्धर्म का प्रतीक है। सूत्रकृतांग के इस रूपक का विश्लेषण करते हुए डा. ए.एन. उपाध्ये ने कहा है- "इस रूपक में निहित आशय के अतिरिक्त भी एक बात मुझे बिलकुल स्पष्ट यह प्रतीत होती है कि राजा की छत्रछाया में ही धर्म प्रचार पाते हैं और इसलिए राजाश्रय प्राप्त करने में पूरी-पूरी प्रतिद्वन्द्वता होती थी।[20] सूत्रकृतांग के सन्दर्भ में इस रूपक के अध्ययन में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है क्योंकि राजा और कमल भारतीय कथा-साहित्य में प्रसिद्ध प्रतीक रहे हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृतांग में शिशुपाल, द्वैपायन, पाराशर आदि के प्रासंगिक उल्लेख हैं। किन्तु आद्रककुमार की कथा विस्तृत है। इस कथा का परवर्तीकाल में पर्याप्त विकास हुआ है। इसी तरह पेढालपुत्र, उदक और गौतम स्वामी का संवाद भी मनोरंजक है। इस तरह यह ग्रन्थ ऐतिहासिक एवं दार्शनिक कथातत्वों की दृष्टि से महत्त्व का है।[21]

स्थानांगसूत्र-

स्थानांगसूत्र में तत्वों एवं लोकस्थिति आदि का वर्णन संख्या की प्रधानता से किया गया है। अतः इसमें कथातत्व कम है। महापद्म भावी तीर्थंकर की कथा इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।[22] श्रमणी पोटिट्ला की कथा इसमें आयी है।[23] तथा सात निन्हवों का वर्णन भी इस ग्रन्थ में है। इस सामग्री से तथा कुछ उपमाओं और प्रतीकों से कथाबीजों की खोज इसमें की जा सकती है।

समवायांगसूत्र-

समवायांगसूत्र में दार्शनिक तत्वों का निरूपण संख्या के क्रम से किया गया है।[24] जैसे- लोक एक है, दण्ड और बन्ध दो हैं। शल्य तीन हैं। चार कषाय हैं। पाँच क्रियाएँ, व्रत, समिति आदि हैं। इसके साथ ही तीर्थंकरों, गणधर, चक्रवर्ती, वासुदेव, आदि धार्मिक महापुरुषों की जीवनियों की कुछ घटनाएँ इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। अतः इस ग्रन्थ में कथा-तत्वों की अपेक्षा चरित-तत्वों का समावेश अधिक है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र)-

भगवतीसूत्र विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें सैंकड़ों विषय हैं। धर्म, दर्शन के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री भी इसमें पर्याप्त है। इस ग्रन्थ में महावीर के साथ वार्ता करने वाले कई पुरुषों और स्त्रियों की कथाएँ हैं। शिवराज ऋषि, जामालि, उदयनराजा, जयन्ती श्रमणोपासिका, शंख, सोमिल, सुदर्शन आदि कई व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। "सूत्र 2.1 में आयी हुई कात्यायन स्कन्द की कथा सुन्दर है। इसकी घटनाओं में रसमत्ता है। और ये घटनाएँ कथातत्व का सृजन करने में पूर्ण सक्षम हैं।"[25] सामान्य व्यक्तियों की कथाओं के लिए तथा महावीर के साथ उनके सम्पर्क की जानकारी के लिए भगवतीसूत्र में अच्छी सामग्री है। गोशालक के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रामाणिक जानकारी इस ग्रन्थ में है।[26] महामन्त्र नवकार का सर्वप्रथम उल्लेख इसी ग्रन्थ में मिलता है।[27] वस्तुतः यह ग्रन्थ जिज्ञासाओं और उनके समाधानों का ग्रन्थ है। इसे तत्कालीन संस्कृति का विश्वकोश कहा जा सकता है।[28]

ज्ञाताधर्मकथा-

आगम ग्रन्थों में कथातत्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं धर्मकथाएँ हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्व-दर्शन को सहज रूप में जन-मानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।[29] इसमें कथाओं की विविधता और प्रौढ़ता है। मेघकुमार (प्र.अ.) थावच्चापुत्र (5), मल्ली (8) तथा द्रोपदी (16) की कथाएं ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। प्रतिबुद्ध राजा, अहन्नक व्यापारी, राजा रुकमी, स्वर्णकार की कथा, चित्रकार कथा, चौक्खा परिव्रजिका आदि कथाएं मल्ली की कथा की अवान्तर कथाएं हैं। मूल कथा के साथ अवान्तर कथा की परम्परा की जानकारी के लिए ज्ञाताधर्मकथा आधारभूत स्रोत हैं। ये कथाएं कल्पनाप्रधान एवं सोद्देश्य हैं। इसी तरह जिनपाल एवं जिनरक्षित की कथा (9), तेतलीपुत्र (14), सुषमा की कथा (18),

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पुण्डरीक एवं पुण्डरीक कथा (19), कल्पना-प्रधान कथाएँ है।

ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त और रूपक कथाएँ भी हैं। मयूरी के अण्डों के दृष्टान्त से श्रद्धा और संशय के फल को प्रकट किया गया है (3)। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असंयमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है (4)। तुम्बे के दृष्टान्त से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है (6)। चन्द्रमा के उदाहरण से आत्मा की ज्योति की स्थिति स्पष्ट की गयी है (10)। दावद्रव नामक वृक्ष के उदाहरण द्वारा आराधक और विराधक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है (11)। ये दृष्टान्त कथाएँ परवर्ती कथा साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं। इनकी मौलिकता असंदिग्ध है।

इस ग्रन्थ में कुछ रूपक कथाएँ भी हैं।[30] दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध में रूपक है (2)। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पाँच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है। उदकजात नामक कथा संक्षिप्त है किन्तु इसमें जल शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा एक ही पदार्थ के शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों को प्रकट किया गया है। अनेकान्त के सिद्धान्त को समझाने के लिए यह बहुत उपयोगी कथा है (12)। नन्दीफल की कथा यद्यपि अर्थ कथा है किन्तु इसमें रूपक की प्रधानता है। धर्मगुरु के उपदेशों के प्रति आस्था रखने का स्वर इस कथा से तीव्र हुआ है (15)। समुद्री अश्वों के रूपक द्वारा लुभावने विषयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है (17)।

ज्ञाताधर्मकथा पशु कथाओं के लिए भी उद्गम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रन्थ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेंढक, सियार आदि की कथाओं के पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथासाहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कंध में यद्यपि 206 साध्वियों की कथाएँ हैं। किन्तु उनके ढाँचे, नाम, उपदेश आदि एक से हैं। केवल काली की कथा पूर्ण कथा है। नारी-कथा की दृष्टि से यह कथा महत्वपूर्ण है।

उपासकदशांग-

उपासकदशांग में महावीर के प्रमुख श्रावकों का जीवन-चरित्र वर्णित है।[31] इन कथाओं में यद्यपि वर्णकों का प्रयोग है फिर भी प्रत्येक कथा का स्वतन्त्र महत्व भी है। व्रतों के पालन में अथवा धर्म की आराधना में उपस्थित होने वाले विघ्नों, समस्याओं का सामना साधक कैसे करे इसको प्रतिपादित करना ही इन कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है। कथा-तत्वों का बाहुल्य न होते हुए भी इन कथाओं के वर्णन पाठक को आकर्षित करते हैं। समाज एवं संस्कृति विषयक सामग्री उवासगदसाओं की कथाओं में पर्याप्त है।[32] ये कथाएँ आज भी श्रावक-धर्म के उपासकों के लिए आदर्श बनी हैं। किन्तु उन श्रावकों की साधना-पद्धति के प्रति पाठकों का आकर्षण कम है, उनकी वर्णित समृद्धि के प्रति उनका अधिक लगाव है।

अन्तकृद्दशासूत्र-

जन्म-मरण की परम्परा का अपनी साधना से अन्त कर देने वाले दश व्यक्तियों की कथाओं का इसमें वर्णन होने से इस ग्रन्थ को अन्तकृद्दशांग कहा है।[33] इस ग्रन्थ में वर्णित कुछ कथाओं का सम्बन्ध अरिष्टनेमि और कृष्ण-वासुदेव के युग से है। गजसुकुमाल की कथा लौकिक कथा के अनुरूप विकसित हुई है। द्वारिका नगरी के विनाश का वर्णन कथा-यात्रा में कौतूहल तत्व का प्रेरक है। ग्रन्थ के अन्तिम तीन वर्गों की कथाओं का सम्बन्ध महावीर तथा राजा श्रेणिक के साथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इनमें अर्जुन मालाकार की कथा तथा सुदर्शन सेठ की अवान्तर-कथा ने पाठकों का ध्यान अधिक आर्कषित किया है। अतिमुक्तकुमार की कथा बालकथा की उत्सुकता को लिए हुए है। इन कथाओं के साथ राजकीय परिवारों के व्यक्तियों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। साधनों के अनुभवों का साधारणीकरण करने में ये कथाएँ कुछ सफल हुई हैं।

अनुत्तरोपपातिकदशा-

इस ग्रन्थ में उन लोगों की कथाएँ हैं, जिन्होंने तपःसाधन के द्वारा अनुत्तर विमानों (देवलोकों) की प्राप्ति की है।[35] कुल 33 कथाएँ हैं, जिनमें से 23 कथाएं राजकुमारों की हैं और 10 कथाएं सामान्य पात्रों की। इनमें धन्यकुमार सार्थवाह-पुत्र की कथा अधिक हृदयग्राही है।

विपाकसूत्र-

विपाक सूत्र में कर्म-परिणामों की कथाएँ हैं।[35] पहले स्कन्ध में बुरे कर्मों के दुखदायी परिणामों को प्रकट करने वाली दश कथाएँ हैं। मृगापुत्र की कथा में कई अवान्तर कथाएं गुफित हैं। उद्देश्य की प्रधानता होने से कथा-तत्व अधिक विकसित नहीं हुआ है। किन्तु वर्णनों का आर्कषण बना हुआ है। अति-प्राकृत तत्वों का समावेश इन कथाओं को लोक से जोड़ता है। व्यापारी, कसाई, पुरोहित, कोतवाल, वैद्य, धीवर, रसोइया, वेश्या आदि पात्रों से सम्बन्ध होने से इन प्राकृत कथाओं में लोकतत्वों का समावेश अधिक हुआ है। दूसरे स्कन्ध की कथाएँ अच्छे कर्मों के परिणाम को बताने वाली हैं। सुबाहु की कथा विस्तृत है। अन्य कथाओं में प्रायः वर्णक है। इस ग्रन्थ की कथाएं कथोपकथन की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं। उनकी इस शैली ने परवर्ती कथा साहित्य को भी प्रभावित किया है। हिंसा, चोरी, मैथुन के दुष्परिणामों को ये कथाएं व्यक्त करती हैं। किन्तु इनमें असत्य एवं परिग्रह के परिणामों को प्रकट करने वाली कथाएं नहीं हैं। सम्भवतः इस ग्रन्थ की कुछ कथाएं लुप्त भी हुई हों। क्योंकि नन्दी और समवायांगसूत्र में विपाकसूत्र की जो कथावस्तु वर्णित है उसमें असत्य एवं परिग्रह के दुष्परिणामों की कथाएं होने के उल्लेख हैं।[36]

उपांग आगम साहित्य :

औपपातिकसूत्र में भगवान् महावीर की विशेष उपदेश विधि का निरूपण है। गौतम इन्द्रभूति के प्रश्नों और महावीर के उत्तरों में जो सवांदतत्व विकसित हुआ है, वह कई कथाओं के लिए आधार प्रदान करता है। नगर-वर्णन, शरीर-वर्णन, आदि में आलंकारिक भाषा व शैली का प्रयोग इस ग्रन्थ में है। राजप्रश्नीयसूत्र में राजा प्रदेशी और केशी श्रमण के बीच हुआ संवाद विशेष महत्व का है। इसमें कई कथासूत्र विद्यमान हैं। इस प्रसंग में धातु के व्यापारियों की कथा मनोरंजक है। उसे लोक से उठाकर प्रस्तुत किया गया है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में यद्यपि भूगोल सम्बन्धी विवरण है किन्तु इसमें नाभि कुलंकर, ऋषभदेव तीर्थंकर एवं भरत चक्रवर्ती की कथाओं का विवरण भी है। पौराणिक कथा-तत्वों के लिए इस ग्रन्थ की सामग्री उपयोगी है। निरयावलिया एवं कप्पिया आदि सूत्रों में राजा श्रेणिक, रानी चेलना, राजकुमार कूणिक की कथा विस्तार से है। इसमें सोमिल ब्राह्मण एवं सार्थवाह-पत्नी सुभद्रा की दो स्वतन्त्र कथाएँ भी हैं। अधिक संतान की चाह और उससे प्राप्त होने वाले दुःख को इस कथा ने रेखांकित किया है। पुष्पिका उपांग में अपने सिद्धान्त के महत्व को प्रतिपादित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करने की कथाएं हैं। इनमें कौतूहल तत्व की प्रधानता है। पुष्पचूला में दश देवियों का वर्णन है। उनमें पूर्वभव भी वर्णित है। वृष्णिदशा में कृष्ण-कथा का विस्तार है। इसमें निषध कुमार की कथा आकर्षक है।

मूलसूत्र :

मूलसूत्रों में कथा-साहित्य की दृष्टि से उत्तराध्ययनसूत्र विशेष महत्व का है। इसमें शिक्षाप्रद एवं भावनाप्रद कथाओं का समावेश है। राजर्षि संजय (18), मृगापुत्र (19), रथनेमि (21) आदि इसमें वैराग्यप्रधान कथाएँ हैं। नमि-करकण्ड, द्विमुख आदि (18) प्रत्येकबुद्रों की कथाएं हैं। कुछ दृष्टान्त कथाएँ इसमें दी गई हैं। कुतिया, सूअर, मृग, बकरा, विडाल आदि के दृष्टान्त पशु-कथाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। चोर, गाड़ीवान, ग्वाला आदि के दृष्टान्त लोक-कथाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी तरह के अन्य कई दृष्टान्त कथा-बीज के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में यद्यपि प्राकृत गाथाओं में कथा-संकेत ही अधिक हैं, किन्तु उनका विकास इस ग्रन्थ के व्याख्या साहित्य में अच्छी तरह हुआ है। अतः कथाओं के विकास को समझने की दृष्टि से उत्तराध्ययन सूत्र का विशेष महत्व है। इस ग्रन्थ की कथाओं की समानता बौद्ध साहित्य और ब्राह्मण साहित्य के प्राचीर आख्यानों से भी होती है। अतः कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन की भी इस ग्रन्थ की सामग्री आगे बढ़ाती है।

आगम साहित्य के प्रायः इन सभी ग्रन्थों से कथात्मक सामग्री का चयन कर उसे एक स्थान पर धम्मकहाणुओगो में मुनि श्री कमलजी ने एकत्र कर दिया है। इस चयन में यह भी दृष्टि देखने को मिलती है कि किसी एक कथा की सामग्री यदि भिन्न-भिन्न आगम ग्रन्थों में प्राप्त है तो पुनरावृत्ति से बचते हुए उसे एक साथ ही संकलित कर दिया गया है। यह भी ध्यान रखा गया है कि इससे कथा-क्रम भी न टूटे। इस तरह "धम्मकहाणुओग" आगम साहित्य का व्यवस्थित कथा-कोश कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में कथाओं का पात्रों की प्रधानता की दृष्टि से इस प्रकार विभाजन किया गया है-

(क) उत्तम पुरुषों के कथानक (मूल पृ. 1-144) (हिन्दी संस्करण- पृ. 1-257) प्रथम स्कन्ध- 1. कुलकर, 2. ऋषभचरित, 3. मल्ली-चरित, 4. अरिष्टनेमि, 5. पार्श्वचरित, 6. महावीरचरित, 7. महापद्म चरित, 8. तीर्थंकरों की दीक्षा, 9. भरत चक्रवर्ती-चरित, 10. चक्रवर्ती-दीक्षा, 11. बलदेव-वासुदेव।

(ख) श्रमण कथानक (मूल पृ. 1-176) (हिन्दी संस्करण द्वितीय स्कन्ध पृ. 1-379)- 1. महाबल, 2. कार्तिक श्रेष्ठि आदि के कथानक, 3. गंगदत्त 4. चित्त सम्भूति, 5. निषध, 6. गौतम एवं अन्य श्रमण, 7. अनीयश कुमार आदि, 8. गजसुकुमाल, 9. सुकुख आदि 10. जालि आदि श्रमण, 11. थावच्चापुत्र आदि 12. रथनेमि 13. अगंती, पूर्णभद्र आदि 14. जितशत्रु एवं सुबुद्धि कथानक 15. नमिराजर्षि, 16. ऋषभदत्त एवं देवानन्दा का चरित, 17. मौरियपुत्र तपस्वी, 18. आद्रक एवं अन्य तीर्थंकर, 19. अतिमुक्तकुमार, 20. अलक्षराजा, 21. मेघकुमार, 22. मकातिश्रमण, 23. अर्जुन मालाकार, 24. कश्यप श्रमण, 25. श्रेणिकपुत्र जालक आदि 26. धन्ना सार्थवाह, 27. सुनक्षत्र, 28. सुबाहुकुमार, 29. भद्रनन्दि आदि श्रमण, 30. पद्म श्रमण, 31. हरिकेशबल, 32. जयघोष-विजयघोष, 33. अनाथी महा-निग्रन्थ, 34. समुद्रपालीय, 35. संजय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा 37. इषुकार राजा, 38. स्कन्दक, 39. मोदगल, 40. शिवराजर्षि, 41. उदायन राजा, 42. जिनपपाल-जिनरक्षित, 43. कालासवेसियपुत्र 44. उदक पेढाल पुत्र, 45. नंदीफलज्ञात, 46. धन्य सार्थवाह, 47. कालोदाई, 48. पुण्डरीक-कण्डरीक एवं 49. स्थविरावली।

(ग) श्रमणी कथानक (मूल पृ. 177-240) हिन्दी संस्करण, भाग 2, तृतीय स्कन्ध, पृ. 1 से 124 1. द्रोपदी कथानक, 2. पद्मावती आदि, 3. पोटिटला कथानक, 4. काली श्रमणी आदि, 5. राजी श्रमणी 6. भूता श्रमणी, 7. सुभद्रा कथानक, 8. नन्दा आदि श्रमणी एवं 9. जयन्ती कथानक।

(घ) श्रमणोपासक कथानक (मूल पृ. 241-378) हिन्दी संस्करण, भाग 2, चतुर्थ स्कन्ध- 1. सोमिल ब्राह्मण, 2. प्रदेशी कथानक, 3. तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक, 4. नन्द मणिकार, 5. आनन्द गाथापति, 6. कामदेव, 7. चूलनीपिता, 8. सुरादेव, 9. चुल्लशतक, 10. कुण्डकोलिय, 11. सद्दालपुत्र 12. महाशतक, 13. नन्दिनीपिता, 14. सलिहीपिता, 15. ऋषभद्रापुत्र, 16. शंख श्रमणोपासक, 17. वरुण-नाग, 18. सोमिल ब्राह्मण 19. श्रमणोपासकों की देवलोक में स्थिति, 20. कूणिक, 21. अम्बड़ परिव्राजक, 22. उदाई, भूतानन्द एवं हस्ति राजा तथा 23. मद्दुय श्रमणोपासक।

(ड.) निन्हव-कथानक (मूल पृ. 379-418) हिन्दी संस्करण, भाग 2, षष्ठ स्कन्ध- 1. श्रेणिक-चेलना 2. रथमूसल-संग्राम, 3. काल आदि की मरणकथा, 4. महाशिलाकंटक-संग्राम, 5. विजय-चोर, 6. मयूरी अंडक, 7. कूर्मकथा, 8. रोहिणिकथा, 9. अश्वकथा, 10. मृगापुत्र, 11. उज्झितक कथा, 12. अभग्नसेन, 13. शकटकथा, 14. वृहस्पतिदत्त कथा, 15. नंदीवर्धन कुमार, 16. अम्बरदत्त कथा, 17. सोरियदत्त, 18. देवदत्ता कथानक, 19. अंजू कथानक, 20. बाल तपस्वी पूरण एवं 21. महाशुक्ल देव की कथा।

इस प्रकार धम्माकहाणुओगो के मूल संस्करण के लगभग 650 पृष्ठों में आगमों के मूल ग्रन्थों में प्राप्त धर्मकथाओं के मूल प्राकृत पाठ का संकलन है। कथाओं का कौन-सा अंश किस आगम से लिया गया है, उसके सन्दर्भ में भी दिये गये हैं। कथाओं को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है, ताकि मूल पाठ से ही कथा के कथानक को समझा जा सके। इस सामग्री का संकलन, संशोधन एवं उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने में मुनिश्री का अथक परिश्रम एवं आगम-अध्ययन में अगाध ज्ञान स्पष्ट रूप से झलकता है।

सन्दर्भ

1. सुयसुत्तगंथ सिद्धंतपवयणे आणवयण उवएसे।
   पण्णवण आगमे या एगट्ठा पज्जवासुत्ते।। -अनुयोगद्वार, 4
2. भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। -समवायांग, पृ. 60
3. दोशी, पं. बेचरदास: जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 1, पृ. 51।
4. जैन, डा. हीरालाल: भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पुस्तक द्रष्टव्य।
5. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि: जैन आगम साहित्य: मनन और मीमांसा, पृ. 35।
6. जैन, डा. जगदीशचन्द्र: जैन आगमों में भारतीय समाज, पुस्तक द्रष्टव्य।
7. आवश्यकनिर्युक्ति, 363-377।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

8. रत्नककरण्ड श्रावकाचार, अधिकार 1, श्लोक 43-46।
9. मुनि श्री कन्हैयालाल 'कमल': "गणितानुयोग", आगम अनुयोग प्रकाशन, सांडेराव।
10. आचारांगसूत्र: सं. श्रीचन्द सुराना "सरस", आगम प्रकाशन समिति ब्यावर, 1980।
11. हर्मन जैकोबी: द सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, भा. 22, भूमिका, पृ.48।
12. आचारांगसूत्र, सं. जम्बूविजय जी. बम्बई, अ. 6,उ.1।
13. आचारांग चूर्णि एवं टीका।
14. मज्झिमनिकाय, भाग 3, बालपण्डितसुत्त, पृ. 239-40।
15. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। -श्रीमद्भगवद्गीता, 2.58
16. कायस्स्स वियावाए एस संगामसीसेवियाहिए। से हु पारंगमे मुणी। -आचारांग, 6.5
17. सूत्रकृतांगसूत्र, सं.अमरमुनि, मानसामण्डी, 1979, भूमिका।
18. सूत्रकृतांगसूत्र, अ. 6, गाथा 15-24।
19. सूत्रकृतांग, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, प्रथम अध्ययन, सूत्र 638 से 644।
20. उपाध्ये, डा.ए.एन.,बृहतकथाकोश, भूमिका।
21. सूत्रकृतांग, सं. श्रीचन्द सुराना 'सरस', ब्यावर, 1982
22. स्थानांगसूत्र, स्थान 8, 625 सूत्र
23. वही, स्थान 8, 626 सूत्र
24. समवायांग- गुजराती रूपान्तर,पं. दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद।
25. शास्त्री, डा. नेमिचन्द्र, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का परिशीलन, वैशाली, पृ.7।
26. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, जैन आगम साहित्य: मनन और मीमांसा, पृ. 125।
27. भगवतीसूत्र, मंगलपद।
28. सिकदर, जे.सी., ए क्रिटिकल स्टडी आफ भगवतीसूत्र, वैशाली,द्रष्टव्य।
29. ज्ञाताधर्मकथा, सं.पं. शोभाचन्द भारिल्ल, ब्यावर, 1982।
30. ज्ञाताधर्मकथा (गुजराती अनुवाद, गोपालदास) भूमिका।
31. उवासगदसाओ- सं. डा. छगनलाल शास्त्री, ब्यावर, 1981
32. उपासकदशासूत्रम्- (अंग्रेजी अनुवाद) डा. ए.एफ. हार्नले, कलकत्ता
33. अन्कृद्दशा- सं. डा. साध्वी दिव्यप्रभा, ब्यावर, 1981
34. अनुत्तरोपपातिकदशा- सं. डा. साध्वी मुक्तिप्रभा, ब्यावर, 1981
35. विपाकसूत्र, सं. डा.पी.एल. वैद्य, पूना
36. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, जै. आ.सा., पृष्ठ 192

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय

कथानक तरह-तरह के

अर्धमागधी के आगम साहित्य में जो कथा-बीज, रूपक अथवा सूक्ष्म कथाएं प्राप्त है, उनका विश्लेषण एवं विस्तार आगम के व्याख्या साहित्य में हुआ है। जिस प्रकार रामायण और महाभारत परवर्ती संस्कृत साहित्य के लिए आधारभूत ग्रन्थ रहें हैं उसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में लिखे गये जैन साहित्य ने आगम साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की है। आगम साहित्य में उपलब्ध कथाओं के मूल रूप को यद्यपि श्रद्धेय 'कमल' मुनी जी ने धम्मकहाणुओगो में व्यवस्थत किया है। किन्तु फिर भी इसमें अभी कई रूपक, दृष्टान्त, लौकिक कथाओं आदि का संकलन करना रह गया है। वह सब एक साथ सम्भव भी नही है। किन्तु आगे ऐसा एक संकलन होना चाहिए।

आगमों में जो कथाएँ उपलब्ध हैं, उनको पूरी तरह से यहाँ देना तथा उनके उत्स और विकास पर विस्तार से यहाँ विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। डा. जगदीशचन्द्र जैन ने प्राकृत कथाओं के उद्भव एवं विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है।[1] उस अध्ययन में उन्होंने आगम की कथाओं पर भी कुछ विचार प्रकट किये हैं। डा. ए.एन. उपाध्ये ने भी अपनी प्रस्तावनाओं में इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री दी है।[2] आगम ग्रन्थों के भारतीय एवं कुछ विदेशी सम्पादकों ने भी अपनी भूमिकाओं में कथाओं की कुछ तुलना की है। किन्तु जैन आगमों में प्राप्त सभी कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है। शोध-कार्य के लिए यह उपयोगी और समृद्ध क्षेत्र है। प्राकृत आगमी की कुछ कथाओं की संक्षिप्त कथावस्तु देते हुए उनके सम्बन्ध में कुछ तुलनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करने से आगे के अध्ययन के लिए कुछ मार्ग निकल सकता है।

कुलकर-परम्परा :

भारतीय इतिहास की पौराणिक परम्परा में कुलकर-संस्था का वर्णन है। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में जीवनवृत्ति का निर्देश एवं मनुष्यों को कुल की तरह इकट्ठे रहने का उपदेश देने वालों को कुलकर कहा गया है।[3] आगम ग्रन्थों में ऐसे 15 कुलकरों का उल्लेख है- इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था- (जंबु. व.2, सु.28)। कुछ ग्रन्थों में इनकी संख्या 14 है।[4] मरुदेव, नाभि, ऋषभदेव इन्हीं कुलकरों में से थे। इन कुलकरों ने समाज और राजनीति दोनों क्षेत्रों को व्यवस्थत किया था। इनकी हाकार, माकार और धिक्कार की नीति मों समाज के सभी नियम समाहित थे।[5] आज के संविधान की कुन्जी कुलकरों की इस नीति में है। जैन परम्परा के कुलकरों और वैदिक परम्परा के मनुओं के कार्य प्रायः समान हैं।[6] समवायांग एवं स्थानांग-सूत्र में केवल कुलकरों के नामों का उल्लेख है। किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कुलकरों की नीतियों का भी संकेत है।[7] कुलकरों की इसी परम्परा में ऋषभदेव हुए हैं।[8]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभचरित :

ऋषभदेव जैन परम्परा में प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में विशाल साहित्य लिखा गया है।[9] किन्तु आगमों में ऋषभदेव का जीवन बहुत संक्षिप्त और सरल है। इनमें उनके पूर्व-जन्मों का उल्लेख नहीं है। स्थानांगसूत्र आदि में विभिन्न प्रसंगों में ऋषभ का उल्लेख मात्र है। किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-सूत्र में उनका विस्तृत विवरण है। उनके चरितबिन्दु इस प्रकार हैं:- 1. जन्ममहिमा, 2. देवों द्वारा अभिषेक, 3. राज्यकाल, 4. कलाओं का उपदेश, 5. प्रव्रज्या-ग्रहण, 6. तपश्चर्या, 7. साधु-स्वरूप, 8. संयमी जीवन की उपमाएं, 9. केवलज्ञान, 10. तीर्थ-प्रवर्तन, 11. आध्यात्मिक परिवार (गण, गणधर आदि) 12. निर्वाण की महिमा।[10]

ऋषभदेव का कथानक जैन, बौद्ध एवं वैदिक- तीनों परम्पराओं में पर्याप्त प्रचलित रहा है। वैदिक परम्परा के शिव एवं जैन परम्परा के ऋषभ का व्यक्तित्व प्रायः एक-सा है। दोनों ही आदिदेव के रूप में सर्वमान्य हैं। इनके जीवन की घटनाओं में कई समानताएँ हैं।[11] बहुत सम्भव है कि शिव और ऋषभ का स्वरूप किसी आदिम लोकदेवता के स्वरूप से विकसित हुआ हो। परम्परा-भेद से फिर उनमें भिन्नता आती गयी। ऋषभ के संयमी जीवन की जो उपमाएं दी गयी हैं वे बड़ी सटीक हैं और काव्य-जगत् में बहु-प्रचलित भी। यथा:-

1. कमल के पत्ते की तरह निर्लिप्त
2. पृथ्वी की तरह सहनशील
3. शरदकाल के जल की तरह शुद्ध हृदय
4. आकाश की तरह निरावलम्ब
5. पक्षी की तरह सब तरफ से मुक्त, इत्यादि।

इन उपमाओं को ध्यान से देखने से प्रतीत होता है कि इनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकृति के मुक्त वातावरण से है। जन-जीवन से है। ऋषभ प्रकृति की ही देन थे और जन-जीवन के लिए उनका व्यक्तित्व समर्पित था।

मल्ली-चरित :

श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार स्त्री भी तीर्थंकर हो सकती है- इस मान्यता का मूल आधार ज्ञाताधर्मकथा में वर्णित मल्ली-चरित है। कथात्मक दृष्टि से इस कथा के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं-

1. महाबल एवं उसके अचल आदि छह मित्रों की घनिष्टता तथा उनके द्वारा सुख-दुःख एवं धर्मसाधना में भी साथ रहने का निश्चय।

2. सातों में महाबल की अधिक तपस्या होना और उसके फलस्वरूप उसे तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध।

3. मिथिला नगरी में महाबल का राजकुमारी मल्ली के रूप में जन्म। उसके छह साथियों की भी विभिन्न प्रदेशों में राजकुमारों के रूप में उत्पत्ति।

4. विभिन्न निमित्त पाकर उन छह राजकुमारों की मल्ली राजकुमारी के सौन्दर्य पर आसक्ति और विवाह के लिए एक साथ मिथिला पर सैन्य सहित आगमन।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

5. मल्ली के पिता राजा कुम्भ इन छहों राजकुमारों के आक्रमण से दुखी। उनकी इस चिन्ता को पुत्री मल्ली द्वारा निवारण करने की प्रतिज्ञा और पिता को दिलासा।

6. मल्ली द्वारा पहले से तैयार की गयी अपनी स्वर्ण-प्रतिमा से सड़े भोजन की दुर्गन्ध के द्वारा उन छहों राजकुमारों को प्रतिबोधन देना।

7. प्रतिबोधन से जाति-स्मरण ज्ञान एवं वैराग्य प्राप्ति के द्वारा मल्ली के साथ ही छहों राजकुमारों की भी दीक्षा।

8. मल्ली द्वारा चैत्र शुक्ला चतुर्थी को निर्वाण की प्राप्ति।

भारतीय कथा-साहित्य के सन्दर्भ में देखा जाय तो इस मल्ली कथा में मूल अभिप्राय है- 'स्त्री के रूप पर आसक्त पुरुषों को किसी प्रभावशाली उपाय के द्वारा प्रतिबोधन देना।' यह अभिप्राय प्राचीन समय के कथा-साहित्य में प्रयुक्त होता रहा है।[12] बौद्ध साहित्य में भिक्षुणी शुभा की कथा भी इसी प्रकार की है। उस पर एक व्यक्ति आसक्त हो गया। वह शुभा के नेत्रों की बहुत प्रशंसा करता था। एक दिन उससे परेशान होकर शुभा ने अपने नाखूनों से अपने नेत्र निकालकर उस कामुक व्यक्ति के हाथ पर रख दिये और कहा कि जिन आँखों पर तुम मोहित थे, उन्हें ले जाओ। इसी तरह की अन्य कथाएँ भी प्राप्त हैं।[13]

उत्तराध्ययनसूत्र में राजीमती ने रथनेमि को वमन के उदाहरण द्वारा प्रतिबोधित किया।[14] अख्यानमणिकोश की रोहिणी नामक कथा में रोहिणी शीलवती ने अपने ऊपर आसक्त राजा को विभिन्न दृष्टान्त सुनाकर प्रतिबोधित किया।[15] रयणचूडरायचरियं में भी इस प्रकार की कथाएं हैं।[16] कथासरितसागर में भी इस अभिप्राय को व्यक्त करने वाली कथाएं प्राप्त हैं। किन्तु इन कथाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि मल्ली की कथा अधिक व्यापक और प्रभावशाली है। इसमें प्रतीकों की योजना अधिक संवेदनशील है। स्वर्णप्रतिमा का रूप नारी-सौन्दर्य एवं उसकी अभिजात्य स्थिति का प्रतीक है। प्रतिमा के ऊपर छेद पर ढका हुआ कमल बाहरी सौन्दर्य के आर्कषण को व्यक्त करता है तथा प्रतिमा के भीतर भोजन की सडांध नारी-शरीर के भीतरी अशुचिता को व्यक्त करने के साथ-साथ कमल के नीचे रहने वाले कीचड़ को भी उद्घाटित कर देती है।[17] इस दुर्गन्ध से राजाओं के द्वारा मुँह ढककर, मुँह फेरकर खड़े हो जाने की घटना[18] संयमित होकर आसक्ति से विमुख हो जाने की वृत्ति को प्रकट कर देती है।

तीर्थंकरचरित :

आगम ग्रन्थों में चौबीस तीर्थंकरों के सम्बन्ध में उनकी जीवनी सम्बन्धी कोई विशेष सामग्री नहीं है। परवर्ती ग्रन्थों में तीर्थंकरों के चरितों का विकास हुआ है। 'अरिट्ठनेमि' और पार्श्वनाथ का संक्षिप्त चरित कल्पसूत्र में है।[19] अरिष्टनेमि के इस चरित में राजीमती के विवाह का प्रसंग एवं पशुहिंसा के प्रति करुणा वाला प्रसंग कल्पसूत्र में नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में इसकी संक्षिप्त जानकारी है।[20] किन्तु व्याख्या साहित्य में इसका विस्तार है।[21] यही स्थिति पार्श्वनाथ के चरित के साथ है। इनके सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जा चुका है।[22]

भगवान महावीर का चरित कुछ विस्तार से आगम ग्रन्थों में प्राप्त है। आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध और कल्पसूत्र में महावीर के जीवन का अधिकांश भाग वर्णित है। कुछ घटनाएं भगवतीसूत्र और औपपातिकसूत्र से ज्ञात होती हैं।[23] स्थानांगसूत्र से ज्ञात होता है कि महावीर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के निर्वाण के अवसर पर देवताओं द्वारा प्रकाश किया गया था,[24] जो वर्तमान में दीपावली उत्सव का आधार है। महावीर की जीवनी पर विस्तृत प्रकाश पड़ चुका है।[25]

भरत चक्रवर्ती :-

आगम ग्रन्थों में भरत चक्रवर्ती की कथा जम्बुद्दीवपण्णति में कुछ विस्तार से है। स्थानांग एवं समवायांगसूत्र में इस कथा के छुटपुट सन्दर्भ ही आये हैं।[26] भरत चक्रवर्ती के सम्बन्ध में यद्यपि समवायांग एवं परवर्ती जैन साहित्य में यह उल्लेख है कि वे ऋषभदेव के पुत्र थे तथा बाहुबली उनका भाई था जिनसे उनका युद्ध भी हुआ था।[27] किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के इस अंश में यह कहीं उल्लेख नहीं है कि भरत, ऋषभदेव के पुत्र थे तथा उन्हें ऋषभदेव ने अपना राज्य सौंपा था। इसी तरह बाहुबली के साथ भी भरत का जो अहिंसक युद्ध हुआ था उसका वर्णन भी आगम के इस कथांश में नहीं है। 3-4थी शताब्दी में विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी भरत और बाहुबली को दो प्रतिपक्षी राजाओं के रूप में चित्रित किया है, दो भाइयों के रूप में नहीं।[28] अतः यहाँ यह चिंतन करने की गुंजाइश है कि ऋषभ, भरत और बाहुबली इन तीन प्रभावशाली व्यक्तियों का आपसी सम्बन्ध सम्भवतः चौथी शताब्दी के बाद साहित्य-जगत् में स्थापित किया गया है।[29] वैदिक साहित्य में ऋषभ एवं भरत के पारिवारिक सम्बन्ध की सूचनाएँ भी पौराणिक युग के साहित्य में ही मिलती हैं। प्राचीन बौद्ध साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख ही नहीं हैं। अतः यह गवेषणा का विषय है कि ऋषभ, भरत और बाहुबली का पारिवारिक सम्बन्ध कब से और किन कारणों से भारतीय साहित्य में प्रविष्ट हुआ है।[30]

'धम्मकहाणुओगो' में भरत चक्रवर्ती का वर्णन चक्ररत्न की उत्पत्ति से प्रारम्भ होता है। आगे उसकी दिग्विजय का विस्तार से इसमें वर्णन है। मागधतीर्थ, दक्षिण दिशा, प्रभासतीर्थ (पश्चिम) तक सिन्धु नदी के तटवर्ती प्रदेशों तक भरत ने विजय यात्रा की। वैताढ्य पर्वत पर भरत की किरातराज के साथ जो मुठभेड़ हुई उसका इसमें विस्तार से वर्णन है। किरात और नागकुमार के आपसी सहयोग का भी इसमें वर्णन है। वापिस अयोध्या लौटते समय नमि-विनमि के साथ घमासान युद्ध का वर्णन साहित्यिक प्राकृत में किया गया है। अयोध्या लौटने पर भरत का महाराज्याभिषेक किया गया[31] और विजय-महोत्सव मनाया गया।[32] इसके बाद भरत के शासन करने का वर्णन है। तदुपरान्त दीक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करने का।[33] यहाँ भी भरत ने ऋषभ से दीक्षा प्राप्त की अथवा उनसे कहीं जाकर वह मिला, ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। जबकि परवर्ती साहित्य में भरत की कथा बहुत विकसित हो चुकी है।[34] इस देश का नाम इसी भरत चक्रवर्ती के नाम पर भारतवर्ष प्रचलित हुआ है, इस सम्बन्ध में प्रायः विद्वान सहमत हैं।[35] क्योंकि प्राचीन समय से ही इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त हैं। भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा का ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से भी महत्व है। कालिदास द्वारा वर्णित राजा रघु की दिग्विजय यात्रा के साथ इस प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन कई सांस्कृतिक तथ्य उजागर कर सकता है।

श्रमण कथानक :-

आगम ग्रन्थों की सामग्री के आधार पर धम्मकहाणुओगो में लगभग 48 श्रमणों के कथानक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संगृहीत हैं। यद्यपि हजारों की संख्या में व्यक्तियों ने दीक्षाएँ लेकर श्रमण-जीवन अंगीकार किया था। किन्तु आगम ग्रन्थों में कुछ प्रमुख श्रमणों की कथाएँ ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। इनमें अरिष्टनेमि और महावीर तीर्थंकर के तीर्थ में दीक्षा प्राप्त श्रमणों की कथाएँ अधिक मात्रा में अंकित हुई हैं। ये कथाएं विभिन्न आगमों में प्राप्त हैं, जिन्हें मुनि 'कमल' जी ने तीर्थंकर क्रम से व्यवस्थित किया है। इन सभी श्रमणों की कथाओं का गहराई से मूल्यांकन कर पाना यहाँ सम्भव नहीं है। कुछ कथानकों पर दृष्टिपात किया जा सकता है।

विमलनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में बलराजा और प्रभावती रानी के महाबल नामक पुत्र का जन्म होता है। स्वप्नदर्शन, गर्भरक्षा, जन्मोत्सव, महाबल की शिक्षा आदि का वर्णन वर्णकों के अनुसार है। धर्मघोष साधु से दीक्षा लेकर महाबल अगले जन्म में वणियाग्राम में सेठ कुल में जन्म लेता है, जहाँ उसका नाम सुदर्शन रखा जाता है। यह सुदर्शन समय आने पर महावीर तीर्थ में दीक्षित होता है और तपश्चर्या के उपरान्त मुक्ति प्राप्त करता है।[36] सुदर्शन नामक सेठ की कथा जैन साहित्य में बहुत प्रचलित है। णायाधम्मकहा में सुदर्शन गृहस्थ एक जैनाचार्य से दीक्षा ग्रहण करता है।[37] स्थानांगसूत्र में पाँचवें अन्तकृत केवली के रूप में सुदर्शन का उल्लेख है।[38] प्राकृत एवं अपभ्रंश के कथाग्रन्थों में भी सुदर्शन नाम नायक के रूप में प्रसिद्ध रहा है।[39]

मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में कार्तिक सेठ एवं गंगदत्त गाथापति की दीक्षा का कथानक सामान्य ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक हजार आठ वणिक पुत्रों के साथ कार्तिक सेठ की दीक्षा का वर्णन प्रभावोत्पादक है।[40]

अरिष्टनेमि के तीर्थ में चित्त एवं संभूति की कथा का वर्णन उत्तराध्ययन में हुआ है। कुल 35 गाथाओं में यह कथा संक्षेप में कही गयी है। इस कथा का विस्तार उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधाटीका में हुआ है। यह दो भाइयों के अटूट प्रेम की कथा है। परस्पर इस अनुराग के कारण वे दोनों 6 भवों तक एक-दूसरे के हित की चिन्ता करते रहते हैं। वाराणसी में भूतदत्त चाण्डाल के चित्त और सम्भूति नामक दो पुत्र थे। वे संगीतकला में निष्णात थे तथा रूप और लावण्य के भी धनी थे किन्तु चाण्डाल जाति का होने के कारण उन्हें समाज में तिरस्कृत होना पड़ता है। अन्त में वे दीक्षा धारण कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। तब उनके अगले भव की परम्परा चलती है।

दो भाइयों के स्नेह और निम्न जाति में उत्पन्न होने से निरादर- इन बिन्दुओं को लेकर प्राचीन समय से ही कथाएँ कही-सुनी जाती रही हैं। उत्तराध्ययन में इस कथा को जिस संक्षिप्त शैली में कहा गया है, उससे प्रतीत होता है कि यह कथा जनमानस में अतिप्रचलित थी। बौद्ध कथाओं में भी इस कथा को स्थान प्राप्त है। चित्त-सम्भूत नामक जातक कथा में यह कथा वर्णित है।[41] दोनों कथाओं की तुलना की दृष्टि से निम्न बिन्दु द्रष्टव्य हैं-

उत्तराध्ययनसूत्र	जातक कथा
1. कथा मूलतः पद्य में थी, जिसे टीका में गद्य में लिखा गया है।	गद्य-पद्य मिश्रित शैली में कथा है।
2. दोनों भाइयों में अटूट प्रेम	वही
3. पूर्वभव में समानता	वही
(क) युगल मृग	वही
(ख) हंस युगल	बाज युगल

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ग) चित्त--सम्भूत	चित्त-सम्भूत
(घ) देवलोक प्राप्ति	ब्रह्मलोक प्राप्ति
(ङ) सेठ-पुत्र एवं राजपुत्र के रूप में जन्म	पुरोहित एवं राजपुत्र के रूप में जन्म।

4. सम्भूत के जीव ब्रह्मदत्त को नरक का निदान सम्भूत के जीव ब्रह्मलोकगामी
(यह कर्म-सिद्धान्त की परम्परा में भेद के कारण है)

5. केवल कथानक में ही नहीं गाथाओं में भी पर्याप्त समानता है। यथा-

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं,	उपनीयती जीवितं अप्पमायु,
वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं।	वण्णं जरा हन्ति नरस्य जीवितो।
पंचालराया ! वयणं सुणाहि,	करोहि पंचाल मम एत वाक्यं,
मा कासि कम्माइं महालयाइं।।	मा कासि कम्मं निरयूप पत्तिया।।
(उत्त. 13/26)	(जातक 498, गा.20)

उत्तराध्ययनसूत्र की कथा-वस्तु का गठन जातक की कथावस्तु की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है तथा उत्तराध्ययन की भाषा भी प्राचीन है। अतः विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उत्तराध्ययन की यह कथा प्राचीन है, भले ही उसने इसे लोक प्रचलित कथा में से ग्रहण किया हो। इस कथा का मूल अभिप्राय तो प्रारम्भ में निम्न जाति के लोगों को भी धर्म और शिक्षा का अधिकार देना था। किन्तु बाद में कथा का विस्तार होने से इसमें कई उद्देश्य सम्मिलित हो गये हैं।

अरिष्टनेमि के तीर्थ में दीक्षा लेने वाले श्रमणों में श्रीकृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का कथानक बहुत रोचक है। देवकी छह श्रमणों को अपने यहाँ देखकर उनकी सुन्दरता के सम्बन्ध में जिज्ञासा करती है। उसे पता चलता है कि वे उसके ही पुत्र हैं, जिन्हे अपहरण कर हरिणेगमेषी नामक देव ने सुलसा गाथापत्नी को दे दिया था। इससे देवकी के मन में पुनः बालक्रीड़ा देखने की लालसा होती है। हरिणेगमेषी देव की आराधना से देवकी को गजसुकुमार नामक पुत्र प्राप्त होता है।

गजसुकुमार की युवावस्था में श्रीकृष्ण उसका विवाह सोमिल ब्राह्मण की कन्या से करना चाहते हैं। किन्तु अरिष्टनेमि की धर्मदेशना से गजसुकुमार मुनि बन जाते हैं। तब अपमानित सोमिल ब्राह्मण द्वारा गजसुकुमार मुनि पर उपसर्ग किया जाता है। किन्तु वे मुनि उपसर्ग सहन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं।[44] गजसुकुमार की यह कथा बौद्ध साहित्य में वर्णित यश की प्रव्रज्या से तुलनीय है।[45] इस कथा में कई कथा तत्व सम्मिलित हैं। यथा-

(1) हरिणेगमेषी द्वारा सन्तान का अपहरण एवं प्रदान
(2) माता द्वारा पुत्र-प्राप्ति की आकांक्षा और उसके लिए प्रयत्न
(3) पुत्र का जन्म एवं उसका लालन-पालन।
(4) धर्मदेशना द्वारा गृहस्थ-जीवन का त्याग।
(5) पूर्वजीवन के बैरी द्वारा मुनि-जीवन में उपसर्ग
(6) उपसर्गों को सहन करते हुए मुक्ति।

सन्तान-प्राप्ति एवं उसके अपहरण के सम्बन्ध में हरिणेगमेषी नामक देव का भारतीय साहित्य में पर्याप्त उल्लेख है।[46] डा. जगदीशचन्द्र जैन ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है।[47] भगवान् महावीर की जीवनी में भी यह घटना प्राप्त है। देवकी के पुत्रों का अपहरण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महाभारत की उस घटना से प्रभावित है, जिसमें कंस द्वारा उसके पुत्रों का हरण कर उनका वध किया जाता है। जैन कथा में वध की घटना को महत्व नहीं दिया गया।

पूर्व-जीवन के वैरी द्वारा मुनि-जीवन में उपसर्ग किये जाने की घटना कई प्राकृत कथाओं में प्राप्त है। पार्श्वनाथ के जीवन के साथ भी कमठ का उपसर्ग जुड़ा हुआ है। किन्तु कल्पसूत्र में इसका उल्लेख नहीं है, बाद के ग्रन्थों में है। अवन्तिसुकुमाल नामक कथा में सुकुमाल मुनि के साथ उसके पूर्वजन्म की भाभी ने सियारनी के रूप में घोर उपसर्ग उपस्थित किया है। गजसुकुमाल के उपसर्ग की घटना का यह विकास प्रतीत होता है।[48]

थावच्चापुत्र की कथा के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं। प्रथम तो इसमें यह घोषित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति घर-बार छोड़ कर दीक्षा लेता है तो श्रीकृष्ण उसके परिवार का भरण-पोषण करेंगे। यह बात अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण है। राजा का धर्म के प्रचार के लिए इससे बड़ा योगदान क्या होगा ? इस कथा में दूसरी बात सुदर्शन के शौचमूलक धर्म की समीक्षा प्रस्तुत करना है। ऐसी कथाओं से जैन धर्म के प्रति रुझान पैदा करने का प्रयत्न किया गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र (22 अ.) में वर्णित रथनेमि-राजीमती कथा अरिष्टनेमि के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यद्यपि यह कथा अत्यन्त संक्षिप्त शैली में कही गयी है, किन्तु इसका सम्प्रेषण तीव्र है। इस कथा में निम्न उद्देश्य स्पष्ट हैं-

1. अरिष्टनेमि को पशुओं के प्रति अपार करुणा को प्रकट करना। माँसाहार का प्रकारान्तर से निषेध।
2. अरिष्टनेमि की वैराग्य भावना एवं अनासक्ति को प्रकट करना।
3. राजीमती का भावी पति के प्रति प्रेम एवं अटूट सम्बन्ध स्थापित करना। प्रकारान्तर से शीलव्रत को दृढ़ करना।
4. रथनेमि को ब्रह्मचर्य भाव से च्युत होने की स्थिति में राजीमती द्वारा उसे प्रतिबोधन देकर पुनः श्रमणचर्या में दृढ़ करना।

इस कथानक का परवर्ती साहित्य में पर्याप्त विकास हुआ है। उसमें श्रीकृष्ण की भूमिका महत्वपूर्ण है।[49] किन्तु आगम ग्रन्थ के इस कथानक में श्रीकृष्ण का नामोल्लेख भी नहीं है और न ही अरिष्टनेमि की किसी क्रिया में उनके सहयोग का उल्लेख है।

जितशत्रु राजा और सुबुद्धि मन्त्री की कथा स्पष्टतः उपदेश कथा है। कथाकार को यहाँ जैन दर्शन की दृष्टि से वस्तु के नानात्मक रूप का प्रतिपादन करना था। सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अन्तर को स्पष्ट करना है। इस कथा में प्रकारान्तर से यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार मन्त्री ने अशुद्ध जल को विशेष शोधन की प्रक्रिया द्वारा शुद्ध जल बना दिया उसी प्रकार जैन दर्शन की दृष्टि में नाना कर्मों से दूषित आत्मा भी विशेष तपश्चर्या द्वारा शुद्ध होकर अनुपम सुख को प्राप्त कर सकता है। अतः कथा एक रूपक कथा का भी उदाहरण है।

नमि राजर्षि की कथा उत्तराध्ययनसूत्र की एक महत्वपूर्ण कथा है। यद्यपि इस कथा में नमि-प्रव्रज्या के निर्णय की पूर्वकथा वर्णित नहीं है, किन्तु नमि और इन्द्र के बीच हुए संवाद का विवरण है। नमि प्रवज्या की कथा भरतीय साहित्य में पर्याप्त प्रचलित थी। सम्भवतः इसलिए उसके उपदेशात्मक अंश को ही उत्तराध्ययनसूत्र में अधिक उजागर किया गया है। टीका साहित्य में यह पूरी कथा दी गयी है। उससे ज्ञात होता है कि-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

1. मदनरेखा के पुत्र को जंगल से ले जाकर पद्मरथ राजा ने उसका नाम 'नमि' रखा। वह मिथिला का राजा बना।
2. नमि एक बार दाहज्वर से ग्रस्त हुआ। उस समय उसने रानियों के हाथों के कंगनों के द्वन्द्व से शिक्षा ग्रहण कर एकाकी जीवन जीने का निश्चय किया।
3. नमि जब प्रव्रज्या-ग्रहण के लिए निकल रहा था तब इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारणकर उनके निश्चय की परीक्षा ली।
4. 'मिथिला का वैभव जल रहा है' इस सूचना से भी नमि राजा अनासक्त रहे।

उत्तराध्ययनसूत्र की यह कथा बौद्ध साहित्य में भी प्राप्त है। महाजनक जातक में इसी प्रकार की कथा है।[50] यद्यपि उसमें कथावस्तु की कुछ भिन्नता है, फिर भी दोनों कथाओं का प्रतिपाद्य एक है। कुछ समानताएँ द्रष्टव्य हैं-

उत्तराध्ययनसूत्र	महाजनक जातक
1- प्रतिबुद्ध होने के कारण	
(क) कंगनों की द्वन्द्वता के दुःख से शिक्षा	(क) फलयुक्त वृक्ष की दुर्दशा से शिक्षा
	(ख) कंगन के द्वन्द्व से शिक्षा
	(ग) दोनों आँख से देखने में भ्रम होने की शिक्षा
2- 'अकेले में सुख है' की स्वीकृति	वही
3- समृद्ध मिथिला को त्याग कर प्रव्रज्या लेने का निर्णय	वही
4- नमि के निश्चय की परीक्षा लेना	वही
(क) इन्द्र द्वारा	देवी सीवली द्वारा
5- "मिथिला जल रही है" के द्वारा राजा को प्रलोभन देना	वही
6- मिथिला के जलने पर भी नमि का कुछ नहीं जलता।[51]	वही
7- जैन कथानक में उपदेशतत्व अधिक है।	कुछ कम है।

सोनक जातक (सं. 529) में इस कथा का कुछ साम्य है। प्रत्येकबुद्ध सोनक यही कहता है कि साधु के लिए नगर में यदि आग भी लग जाय तो उसका उसमें कुछ नहीं जलता है।[52] महाभारत में मण्डव्यमुनि और जनक के संवाद में भी राजा जनक ने यही कहा है कि मिथिला के प्रदीप्त होने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता है।[53] इससे ज्ञात होता है कि मिथिला के राजा नमि अथवा जनक का आसक्ति भाव प्राचीन भारत की विचारधाराओं में प्रचलित था। विष्णुपुराण में भी कहा गया है कि मिथिला के सभी राजा आत्मवादी होते हैं।[54] नमि राजा के कथानक की इन तीनों परम्पराओं में जातक कथा अधिक प्राचीन प्रतीत होती है। क्योंकि उसमें कथातत्व अधिक है, उपदेशतत्व कम है। जबकि जैन कथानक में कथा का निर्माण टीका साहित्य में हुआ है।

उत्तराध्ययनसूत्र में दो नमि राजाओं की प्रव्रज्या का वर्णन है। एक नमि तीर्थंकर हैं, दूसरे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नमि प्रत्येकबुद्ध हैं। 9वें अध्ययन की कथा प्रत्येकबुद्ध नमि से सम्बन्धित है। यह आश्चर्यजनक है कि जैन परम्परा में ऋषिभाषित प्रकीर्णक में 45 प्रत्येकबुद्धों का जीवन संकलित हैं। किन्तु इनमें नमि प्रत्येकबुद्ध का नाम नहीं है। इससे भी संकेत मिलता है कि यह कथा बौद्ध-परम्परा से जैन साहित्य में गृहीत हुई है।

श्रमण कथानकों में मेघकुमार की कथा बहुत प्रसिद्ध है। यह कथा सांस्कृतिक दृष्टि से महत्व की है। ज्ञाताधर्म में मेघकुमार की प्रव्रज्या आदि का जो वर्णन है, उससे कथा के निम्न प्रमुख भाग ज्ञात होते हैं-

1. राजा श्रेणिक, रानी धारिणी और अभयकुमार की कथा।
2. मेघकुमार का जन्म, शिक्षा, विवाह आदि।
3. महावीर के उपदेश से वैराग्य भावना।
4. माता-पिता एवं मेघकुमार के बीच वैराग्य के सम्बन्ध में वार्तालाप।
5. मेघ की दीक्षा का महोत्सव।
6. मेघमुनि को रात्रि में शय्या-परीषह एवं उससे श्रमण-जीवन के प्रति उदासीनता।
7. महावीर द्वारा मेघकुमार के पूर्वभव सुनाकर उसे पुनः दीक्षा में दृढ़ करना।
8. पूर्वभवों में सुमेरुप्रभ हाथी और खरगोश की कथा।

यह कथा कुछ अंशों में गजसुकुमाल की कथा से मिलती-जुलती है, जिसे इसका विकसित रूप माना जा सकता है। जो कार्य इस कथा में अभयकुमार ने किये हैं, उसमें श्रीकृष्ण द्वारा किये जाते हैं। वैराग्य-प्राप्ति के लिए माता-पिता की आज्ञा लेना एवं उनके बीच संवाद होना यह एक प्रचलित अभिप्राय है। बौद्ध साहित्य में भी इसका उल्लेख है। मेघकुमार की कथा की भाँति बौद्ध साहित्य में नन्द की दीक्षा का विवरण प्राप्त है।[55] यद्यपि कथा के गठन में दोनों में कुछ भिन्नता है। यथा-

1. मेघकुमार अपने गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा और सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए मुनिसंघ में रात्रि में हुए अपमान और सोने के कष्ट के कारण श्रमणचर्या से उदासीन होता है। जबकि नन्द को अपनी सुन्दर पत्नी जनपद-कल्याणी की बहुत याद आती है और वह भिक्षु-जीवन से उदासीन हो जाता है।
2. महावीर मेघमुमार को उसके पूर्व-जन्म में सहन किये गये कष्ट को याद दिलाते हुए उसे पुनः श्रमण जीवन के प्रति आश्वस्त करते हैं। जबकि बुद्ध नन्द को एक कुरूप बन्दरिया तथा स्वर्ग की अप्सराओं के सौन्दर्य को दिखाकर उसे भिक्षु जीवन में पुनः प्रतिष्ठित करते हैं। इस तरह साधना से विचलित होने और उसमें पुनः प्रतिष्ठित होने का अभिप्राय इन दोनों कथाओं में है।
3. इन कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज के प्रतिष्ठित वर्ग के युवको को मुनिसंघ में दीक्षित करना महावीर और बुद्ध दोनों के लिए आवश्यक हो गया था ताकि अन्य वर्ग के लोग भी इस ओर आकृष्ट हो सकें।
4. दोनों कथाओं के नायकों की तुलना करने पर मेघकुमार का जीवन अधिक प्रभावित करता है। क्योंकि उसमें पूर्वजन्म में भी असीम करुणा और सहनशीलता थी तथा मुनि-जीवन में भी वह प्रतिष्ठा और घमण्ड से ऊपर उठ चुका था। यद्यपि नन्द भी अपने पूर्वजन्मों में हाथी था तथा उसकी घटना भी लगभग समान है।[56]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन मालाकार मूलतः एक यक्षकथा है। यक्ष की आराधना एवं उसके प्रभाव के साथ-साथ क्रूर से क्रूर व्यक्ति कैसे संयम एवं आध्यात्म के मार्ग में आ सकता है, इस बात को उजागर करना ही कथा का मूल उद्देश्य है। जंगल में रहने वाले क्रूर दस्यु वाल्मीकि के हृदय-परिवर्तन की घटना रामायण में प्राप्त है। बौद्ध साहित्य में अंगुलिमाल का कथानक व्यापक था। उसी कोटि का यह अर्जुन मालाकार का कथानक है। इस कथानक में जो परकाया प्रवेश करके अपने प्रभाव को दिखाने की बात यक्ष ने की है, वह अभिप्राय भारतीय कथा साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुआ है।[57] विद्वानों ने इस मोटिफ का विशेष अध्ययन किया है।[58] इस कथा के अन्तर्गत सुदर्शन नामक साधक की दृढ़ता को भी प्रकट किया गया है।

सार्थवाहपुत्र धन्य अनगार की कथा उत्कृष्ट तपस्या का उदाहरण है। तपश्चर्या में शरीर की अवस्था का वर्णन अनेक उपमाओं एवं रूपकों के द्वारा किया गया है। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध की तपश्चर्या का भी इसी प्रकार वर्णन प्राप्त है। किन्तु जैन कथा का यह वर्णन अधिक सजीव है।

उत्तराध्ययनसूत्र में वर्णित हरिकेशी मुनि की कथा तत्कालीन जातिवाद की उग्रता के प्रति विरोध को प्रकट करने के लिए प्रस्तुत की गयी है। चाण्डाल एवं ब्राह्मण इन दोनों जातियों का श्रमण जीवन में कोई महत्व नहीं होता है। महत्व होता है वहाँ साधना का। इसी तरह इस कथा में हिंसक यज्ञों की व्यर्थता को उजागर किया गया है। इसके लिए एक यक्ष को माध्यम बनाया गया है। प्रकारान्तर से दान की महिमा और उसके उपयुक्त क्षेत्र का प्रतिपादन भी इस कथा के माध्यम से हुआ है।[59] इसी प्रकार की कथा मातंग जातक में भी वर्णित है। दोनों कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का आयोजन, चाण्डाल मुनियों की उपेक्षा एवं उनसे घृणा, जातिवाद का निरसन तथा दान की वास्तविक उपयोगिता दोनों में समान है। फिर भी कथा की संघटना में अन्तर है। विद्वानों का मत है कि बौद्ध कथा में दो कथाएँ मिली हुई हैं तथा वह मिश्रित है अतः वह बाद की है। जैन कथा प्राचीन है।[60] जैन कथा में ब्राह्मणों के प्रति उतना कटु एवं उग्र दृष्टिकोण नहीं है, जितना बौद्ध कथा में है।

धम्मकहाणुओगो में श्रमण कथानक खण्ड में इन कथाओं के अतिरिक्त अन्य भी कई कथाएं संकलित हैं। उनमें शिवराज-ऋषि (पृ.133) जिनपालित जिनरक्षित (पृ.140), उदक पेढाल पुत्र (पृ.148), धन सार्थवाह कथानक (पृ.159) आदि महत्वपूर्ण कथानक हैं। इनसे प्राकृत कथा साहित्य के कई रूप प्रकट होते हैं। ये श्रमण कथानक जैन परम्परा में श्रमणों की दीक्षा, परीषह-जय, तपश्चर्या एवं ज्ञान, ध्यान तथा चरित्र आदि के कई पक्षों को प्रकट करते हैं। किन्तु इसके साथ ही इनका कथात्मक महत्व भी कम नहीं है। उस पर अभी बहुत कम अध्ययन किया गया है। इन कथाओं के उद्गम स्थान तथा विकास-क्रम को खोजने की भी आवश्यकता है। बौद्ध कथाओं के साथ इनकी तुलना करना जरूरी है।[61]

श्रमणी कथानक :

धम्मकहाणुओगो में प्रमुख नौ श्रमणियों के कथानक सम्मिलित हैं। इनमें द्रौपदी का कथानक सबसे बड़ा है। उसमें निम्न कथा-घटनाएं सम्मिलित हैं-

1. नागश्री ब्राह्मणी की कथा (मुनि आहार में दोष)।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. धर्मरुचि अनगार की करुणा।
3. सुकुमालिका का दुर्भाग्य एवं निदान।
4. द्रौपदी की कथा (पांच पाण्डवों से विवाह)।
5. कच्छुल्ल नारद की भूमिका।
6. श्रीकृष्ण और पाण्डव-मैत्री।
7. पाण्डवों का युद्ध।
8. द्रौपदी-पुत्र पाण्डुरोन का राज्य।
9. द्रौपदी की प्रव्रज्या एवं साधना द्वारा निर्वाण।

इस कथानक में महत्वपूर्ण बात निदान की है। जहरीला आहार मुनि को देने से नागश्री अगले जन्म में सुकुमालिका होती है, जहाँ उसे परिवार, पति आदि सबकी उपेक्षा सहनी पड़ती है। सुकुमालिका को साधक जीवन का अवसर मिला तो भी उसने भौतिक सुखों के आकर्षण में ऐसा निदान किया कि अगले जन्म (द्रौपदी) में पांच पतियों का दासत्व स्वीकारना पड़ा। किन्तु फिर भी वह साधना में जुटी रही। जिसकी अन्तिम परिणति निर्वाण में हुई। अतः यह कथा स्त्री की सतत-साधना द्वारा अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने की कथा है। इस कथा का परवर्ती जैन साहित्य में काफी विकास हुआ है। डा. हीरालाल जैन ने इस कथा के उत्स एवं विकास पर प्रकाश डाला है।[62] प्रकारान्तर से इस कथा में श्रीकृष्ण के नरसिंहावतार का भी वर्णन है। यह शोध का विषय है कि श्रीकृष्ण के साथ यह प्रसंग कब और किस आधार पर जुड़ा है।

सुभद्रा श्रमणी की कथा के प्रसंग में ज्ञात होता है कि उसके मन में अनेक बालकों की माँ होने की लालसा थी। उसका बहुपुत्रिका नाम ही प्रचलित हो गया था। सोमा नामक युवति के जन्म में उसने 16 बार प्रसव में 32 बालकों को जन्म दिया। किन्तु वह उन बालकों की सम्हाल करते-करते दुखी हो गयी। अन्ततः उसने प्रव्रज्या धारण कर इस दुख से छुटकारा प्राप्त किया और साधना करके सिद्धि प्राप्त की। श्रमणी-कथाओं में जयन्ती का कथानक भी ध्यान आकर्षित करता है। भगवान् महावीर को प्रथम वसति प्रदान करने वाली यही जयन्ती श्रमणोपासिका थी। महावीर और जयन्ती के बीच तत्वचर्चा भी हुई है।

आगम ग्रन्थों में श्रमणी कथानकों के विवरण को देखने से ज्ञात होता है कि उनका अंकन अपेक्षाकृत आगमों में कम हुआ है। महावीर की शिष्य परम्परा में साध्वियों की संख्या अधिक मानी जाती है। उस दृष्टि से कथानकों में उनका प्रतिनिधित्व कम हुआ है। साध्वीसंघ की प्रमुखा एवं महावीर की प्रथम शिष्या चन्दना सती का तो आगम ग्रन्थों में कथा के रूप में उल्लेख भी नहीं है। केवल प्रथम शिष्या के रूप में नाम अंकित है।[63] जबकि व्याख्या साहित्य से ज्ञात होता है कि चन्दना का महावीर के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। चन्दना का कथानक आगमों में क्यों छूट गया इस पर चिन्तन किया जाना आवश्यक है। वर्णनों में "जाव" की परम्परा रही है। कहीं इस संक्षेपीकरण में चन्दना का कथानक लुप्त न हो गया हो, यह देखने की बात है। आगमों में वर्णित श्रमणी-कथाओं की बौद्ध भिक्षुणियों के जीवन के साथ तुलना करने से दोनों के उज्ज्वल चरितों पर प्रकाश पड़ सकता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणोपासक कथानक :

आगम ग्रन्थों में पार्श्वनाथ के तीर्थ में दो श्रमणोपासकों एवं महावीर के तीर्थ में 21 श्रमणोपासकों के कथानक अंकित हुए हैं। यद्यपि इन तीर्थंकरों के अनुयायियों की संख्या हजारों में थी। किन्तु जिन श्रमणों ने अपनी किसी साधना व चिन्तनधारा द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया था, उनके उदाहरण तीर्थंकरों द्वारा अपने उपदेशों में दिये गये हैं। अतः ये आदर्श श्रमणोपासक हैं, जिनके जीवन से अन्य लोग भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पार्श्वनाथ के तीर्थ में सोमिल ब्राह्मण ने उनसे शिक्षा ग्रहण की। किन्तु अन्य तीर्थिकों के प्रभाव से वह फिर जैन धर्म से च्युत हो गया। तापस-चर्या की वह साधना करने लगा। तब एक देव ने आकर सामिल को सही प्रव्रज्या का अर्थ बताया। सोमिल ने फिर से अणुव्रत आदि ग्रहण किये। पार्श्वनाथ के तीर्थ में प्रदेशी राजा द्वारा श्रावकधर्म स्वीकार करने की कथा विस्तार से वर्णित है। इस कथानक के प्रारम्भ में सूर्याभ नामक देव भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित होकर नृत्य आदि कि व्यवस्था करता है। तदुपरान्त राजा प्रदेशी का परिचय है। प्रदेशी और केशी कुमार श्रमण के बीच जीव के अस्तित्व एवं नास्तित्व के सम्बन्ध में विशद चर्चा है। कथा में संवादतत्व के अध्ययन के लिए यह कथा उपयोगी है। इस कथा का तुलनात्मक अध्ययन मिलिन्दपन्हो की कथावस्तु के साथ किया जा सकता है। आत्मा के अस्तित्व की समस्या पार्श्व, महावीर एवं बुद्ध के समय में प्रमुख समस्या थी।

महावीर के तीर्थ में हुए कई श्रमणोपासक प्रसिद्ध थे। ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग एवं भगवतीसूत्र आदि में कुछ श्रमणोपासकों के कथानक प्राप्त हैं। नंद मणिकार ने एक सार्वजनिक वापी का निर्माण कराया था। उस वापी में नंद की बहुत आसक्ति थी। फलतः मृत्यु के बाद वह वापी में मेंढ़क बना। मेंढ़क होते हुए भी उसने महावीर के वन्दन करने के भाव किये। किन्तु घोड़े की टाप से घायल होकर वह मेंढक मृत्यु को प्राप्त हुआ। वंदन-भावना के कारण वह देव बना। यह कथा जंतु-कथा के अध्ययन के लिए उपयोगी है।

उपासकदशांगसूत्र में दश उपासकों के कथानक वर्णित हैं। आनन्द उपासक की भाँति ही बाकी 9 उपासकों की कथा को प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं से ज्ञात होता है कि ये उद्देश्यपूर्ण कथाएँ हैं। इन कथाओं के माध्यम से महावीर के धर्मशासन के प्रति लोगों को आकर्षित करना तथा गृहस्थ-जीवन भी साधना की भूमि है इस बात को उजागर करना इन वर्णनों का प्रतिपाद्य है। आनन्द के प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि एक गृही साधक भी अच्छा तत्व-चिन्तक हो सकता है। गौतम जैसे श्रमण भी उसके सामने अपने अज्ञान के प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करते हैं। महावीर की निष्पक्षता का उद्घोष भी इस प्रसंग से होता है। इन दशों कथानकों का कथा-तन्त्र प्रायः एक जैसा है।[64] अतः कथातत्व का इनमें अभाव है। इससे यह जान पड़ता है कि उपासकदशांग की कथाएँ संभवतः अपने मूलरूप में नहीं है। ग्रन्थ के विषय का ध्यान रखकर बाद में गढ़ दी गयी है।

औपपतिकसूत्र में महावीर के दो श्रावकों का प्रमुखरूप से वर्णन है। कूणिक राजा ने महावीर के उपदेश सुनने के लिए चंपानगरी को सजाया था तथा उनके उपदेश सुनने को गया था। इस प्रसंग में चंपा नगरी और महावीर का जो वर्णन किया गया है, वह साहित्यिक वर्णनों के लिए आदर्श है। कथा में काव्यात्मक वर्णन किस प्रकार उपस्थित किये जाते हैं, इसका यह प्रमुख

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरण है। कूणिक राजा जैन एवं बौद्ध दोनों ही परम्परा में पर्याप्त चर्चित है। दूसरी कथा अंबड परिव्राजक की है, जिसने अपने शिष्यों सहित महावीर का उपदेश सुना था। अंबड के दृढ़ सम्यक्त्व का प्रतिपादन इस कथा की विशेषता है।

आगम ग्रन्थों में श्रमण, श्रमणी एवं श्रमणोपासकों के कथानकों के साथ ही श्रमणोपासिकाओं के कथानक धम्मकहाणुओगो में अलग से संग्रहीत नहीं किये गये हैं। संभवतः श्रमणोपासकों के कथानकों के साथ ही उनकी पत्नियों के उल्लेख हो जाने से आगम ग्रन्थों में अलग से उनके कथानक कम अंकित हुए हैं। हो सकता है कि नारियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण भी इसमें एक कारण रहा है। अन्यथा उस समय की शीलवती एवं धार्मिक महिलाओं का महावीर के शासन को समुन्नत करने में कम योगदान नहीं रहा है।

निण्हव कथानक :

भगवती सूत्र में वर्णित जामिल एवं गोशालक आदि सात निण्हवों के कथानक भी आगम कथा-साहित्य में अपना विशेष महत्व रखते हैं। क्योंकि प्रतिपक्ष का प्रतिनिधित्व इन्हीं के द्वारा होता है। महावीर की जीवनी एवं चिन्तन को समझने के लिए इन निण्हवों की कथा को समझना आवश्यक है। बौद्ध साहित्य में भी गोशालक का कथानक है। वहाँ उसे मक्खली गोशाल कहा गया है। विद्वानों ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त गवेषणा की है, जिससे यह प्रमाणित है कि गोशालक आजीवक सम्प्रदाय का नेता था।

प्रकीर्णक कथानक :

धम्मकहाणुओगो के षष्ठ प्रकीर्णक खण्ड में आगमों में प्राप्त फुटकर कथाएं संकलित हैं। इनमें से अधिकांश ज्ञाताधर्मकथा एवं विपाकसूत्र में प्राप्त हैं। इन कथाओं को दृष्टान्त-कथाएँ कहा जा सकता है। विभिन्न अवसरों पर इन कथाओं के उदाहरण देकर कर्मसिद्धान्त एवं अन्य तत्वदर्शन को स्पष्ट किया गया है। रथमूसलसंग्राम के वर्णन द्वारा युद्ध में नरसंहार से होने वाली क्षति को स्पष्ट किया गया है। और सचेत किया गया है कि युद्ध में मरने से सभी को स्वर्ग नहीं मिलता है। इस कथा में राजा श्रेणिक, रानी चेलना एवं कूणिक के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है।[66]

विजय चोर की कथा एक प्रतीक कथा है। इसमें दो विरोधी शक्तियों का एकीकरण दिखाकर जैन दर्शन के अनेकान्तवाद को प्रकारान्तर से स्पष्ट किया गया है। आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को भी कथाकार ने प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया है। मयूरी-अंडक नामक कथा कौतूहल-वर्धक कथा है। श्रद्धा एवं शंकाशील मन के स्वरूप को प्रकट करने के लिए यह कथा विशेष महत्व की है। पशु-पक्षी के प्रशिक्षण की सूचना भी इस कथा से मिलती है। दो कछुओं की कहानी से चंचल प्रकृति एवं संयमित प्रकृति वाले साधकों के परिणामों का पता चलता है। शृगाल की चालाकी अवसरवादी व्यक्तियों की मनोवृत्ति को प्रकट करती है।

ज्ञाताधर्मकथा की रोहणी कथा आगम-साहित्य की श्रेष्ठ कथाओं में से है। परिवार के सदस्यों के विभिन्न स्वभावों को इसमें प्रकट किया गया है। चार बहुओं की कथा के नाम से इस कथा ने परवर्ती कथा साहित्य में पर्याप्त स्थान पाया है। इस कथा ने विदेशी कथा साहित्य को भी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावित किया है। अश्वों को पकड़ने की कथा भी एक प्रतीक कथा है। जो अश्व लुभावने पदार्थों की ओर आकृष्ट हुए वे पराधीन हो गये, शेष स्वाधीन बने रहे। विषयों की आसक्ति के प्रति सजग रहने की बात इस कथा में कही गयी है। इसी विषय से सम्बन्धित कथा कुवलयमाला में भी आयी है।[67]

विपाकसूत्र की कथाएँ कर्मफल को प्रतिपादित करने वाली कथाएँ हैं। किन्तु इनकी विषयवस्तु के आधार पर इन्हें सामाजिक कथाएँ कहा जा सकता है। इनमें समाज के उन सभी प्रकार के व्यक्तियों की वृत्तियों का वर्णन है, जो हिंसा, मांसाहार, क्रूर शासन, मद्यपान, वेश्यागमन, चोरी, मांस-विक्रय, कठोर दंड, दोषयुक्त चिकित्सा, ईर्ष्या, द्वेष आदि अनेक समाज विरोधी व्यापारों में लीन थे। उन्होंने उसके दुष्परिणाम जन्मों तक भोगे, यही संम्प्रेषण देना इन कथाओं का उद्देश्य है। इन कथाओं में एक बात समान रूप से देखने को मिलती है कि हर अपराधी पात्र विभिन्न प्रकार के फलों को भोग कर अन्त में जब सद्गति को गमन करता है तब उसे सेठ के घर जन्म अवश्य लेना होता है। उसके बाद ही उसकी दीक्षा आदि सम्पन्न होती है। इस प्रकार के वर्णनों में कथातत्व में रूढ़िता आ जाती है, किन्तु इससे कथाओं की समकालीन मान्यताओं की भी जानकारी मिलती है। विपाकसूत्र के द्वितीय श्रुत-स्कन्ध की कथाओं में केवल सबाहु की कथा वर्णित है। शेष कथाएँ संक्षिप्त हैं। इनमें दान का फल एवं पाँच सौ कन्याओं से विवाह सब में समान है।

सन्दर्भ

जैन, डा. जगदीश चन्द्रः प्राकृत नेरेटिव लिटरेचर, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ, दिल्ली, 1981, पुस्तक द्रष्टव्य।
2. उपाध्ये, डा. ए.एन.: बृहत्कथाकोश की भूमिका।
3. आदिपुराण, सगेउ,श्लोकशा
4. हरिवंशपुराण, सर्ग 7, श्लोक 124 आदि।
5. शास्त्री, डा. नेमिचन्द्रः आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ.136।
6. डा. फतेहसिंहः भारतीय समाजशास्त्र के मूलाधार, पृ. 137।
7. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ.4।
8. शास्त्री, देवेन्द्र मुनिः ऋषभदेव- एक परिशीलन, पृ. 118 आदि।
9. देखें वही।
10. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ. 6-23।
11. शास्त्री, पं. कैलाशचन्द्रः जैन साहित्य के इतिहास की पूर्व पीठिका, पुस्तक द्रष्टव्य।
12. देखें, पेन्जरः 'द ओसन आफ स्टोरी' भूमिका।
13. जैन, शिवचरणलालः आचार्य बुद्धघोष और उनकी उट्ठकथाएँ, दिल्ली, 1969।
14. उत्तराध्ययनसूत्र, अ. 22, गा. 41-52।
15. आख्यानमणिकोश, कथानक संख्या 15, पृ. 61।
16. रयणचूडरायचरियं, सं. श्री विजयकुमुदसूरि, पृ. 54।
17. तीसे काणगपडिमाए, मत्थयाओं तं पउमं अवणेइ। -ध.क.पृ.43
18. पिहेत्ता परम्मुहा चिट्ठति। -ध.क.पृ.43

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

19. कल्पसूत्रम्- सं.मं. विनयसागर, जयपुर।
20. उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन 22वां।
21. शास्त्री, देवेन्द्रमुनिः भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्णः एक अनुशीलन, पुस्तक द्रष्टाव्य।
22. वही, भगवान पार्श्व- एक समीक्षात्मक अध्ययन।
23. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ. 54-85।
24. वही, पैराग्राफ 358, स्थानांग, अ.1, सू.76।
25. शास्त्री, देवेन्द्रमुनिः भगवान महावीर- एक अनुशीलन, आदि पुस्तकें।
26. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ. 114-138।
27. आवश्यकचूर्णि, पृ. 210 आदि एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि में।
28. पउमचरियं, 4.35-55 गाथा एवं द्रष्टव्य लेखक का निबन्ध 'बाहुबली स्टोरी इन प्राकृत लिटरेचर' गोम्मटेश्वर कोमेमोरेशन वोल्यूम, 1981 में प्रकाशित, पृ.76-82।
29. वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, पृ.186।
30. मालवणिया, पं. दलसुख, 'द स्टोरी ऑफ बाहुबली' सम्बोधि, पार्ट 6, भा. 3-4, 1978।
31. धम्मकहाणुओगो, मूल पैराग्राफ 570-572 पृ.134।
32. वही, पैरा., 578 पृ. 136 तथा जैनागम-निर्देशिका पृ. 685 आदि।
33. वही, पैरा. 583, 584 पृ. 137।
34. देखें- शास्त्री, देवेन्द्रमुनिः ऋषभदेव- एक परिशीलन, पृ.181-224।
35. देखें- मुनि महेन्द्र कुमार 'प्रथम': तीर्थंकर ऋषभ और चक्रवर्ती भरत, कलकत्ता, 1974 पृ.149 आदि।
36. भगवतीसूत्र, शतक 11, उ. 11।
37. णायाधम्मकहा, 5वाँ अध्ययन।
38. स्थानांगसूत्र,स्थान 10, सू.113।
39. जैन, डा.हीरालालः सुदंसणचरिउ, भूमिका, पृ. 24-25।
40. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमण कथानक, पृ.13 पैरा 58।
41. जातक, खण्ड 4 (हिन्दी अनुवाद), सं. 498।
42. सरपेन्टियर, 'द उत्तराध्ययनसूत्र' पृ.451।
43. घाटगेः ए.एम.:'ए फ्यू परेलल्स इन जैन एण्ड बुद्धिस्ट वर्क्स' नामक निबन्ध, एनल्स आफ द भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट, भाग 17 (1935-36) पृ. 342।
44. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमण कथा, पृ.23 आदि।
45. महावग्ग, पब्बज्जाकथा, नालन्दा संस्करण, पृ.18-21।
46. कुमारस्वामी, ए.के.: द यक्षाज्, पृ. 12।
47. जैन, डा. जगदीशचन्द्रः जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 440।
48. द्रष्टव्य, लेखक का निबन्ध- 'सुकुमाल स्वामी कथा- एक अध्ययन', प्राच्य विद्या सम्मेलन, धारवाड़, 1976 में प्रस्तुत।
49. हरिवंशपुराण, सर्ग 55, श्लोक 29-44।
50. महाजनक जातक (हिन्दी अनुवाद, सं. 539)।
51. सुह वसामो जीवामो जेसिं मो नत्थी किंचण।
मिहिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झई किंचण।। - उत्त. 9.14।
यही- महाजनक जातक में भी गाथा 125।
52. पंच म भद्द अघनस्स अनागारस्स भिक्खुनो।
नागम्हि डह्यमानम्हि नास्स किंचि अडह्यथ।। -सोनकजातक 529।
53. महाभारत, शान्तिपर्व, अ.276, श्लोक 4।
54. आचार्य तुलसीः उत्तराध्ययन-एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.355।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

55. सुत्तनिपात- अट्ठकथा, पृ. 272. जातककथा (सं. 182) धम्मपदअट्ठकथा, खण्ड 1, पृ. 59-105 तथा थेरगाथा, 157।
56. संगमावतार जातक सं. 102 (हिन्दी अनुवाद)।
57. पेन्जर, कथासारित्सागर, जिल्द 1, अध्याय 4, पृ. 37।
58. ब्लूमफील्ड, "आन द आर्ट आफ ऐन्टरिंग एन अदर्स बाडी" नामक निबन्ध प्रोसीडिंग्स अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसायटी, 56।
59. उत्तराध्ययनसूत्र, सुखबोधटीका पत्र 173-75।
60. घाटगे, ए.एम., का "ए फ्यू पैरेलल्स इन जैन्स एण्ड बुद्धिस्ट वर्क्स" नामक निबन्ध।
61. जैन जगदीशचन्द्रः प्राचीन भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ (बौद्ध कहानियाँ), दिल्ली 1977।
62. जैन, डा. हीरालालः सुगन्धदशमी कथा, भूमिका, पृ.8।
63. (क) अंगसुत्ताणि (आचार्य तुलसी), प्रथम, पृ. 946।
जक्खिणी पुप्फचूला य वंदणज्जा य आहिया। -समवायांग, सु.233
(ख) अज्जवंदणा- भगवती, 9.153।
64. तुलनात्मक चार्ट के लिए देखें- उवासगदसाओ, ब्यावर, सं.- डा. छगनलाल शस्त्री, पृ. 194-195।
65. डा. बरुआ- "द आजीवकाज्" द्रष्टव्य।
66. निरयावलीकहा, अ. 2.10।
67. द्रष्टव्य, लेखक का शोध-प्रबन्ध- कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, वैशाली, पृ. 210।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय

कथाओं में सांस्कृतिक धरोहर

जैन आगमों में उपलब्ध उपर्युक्त सभी प्रकार की कथाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि किसी बात को समझने के लिए कथा कान्ता-सम्मत पद्धति है। इसीलिए छोटी-छोटी कथाएँ कई गहरी बातें कह जाती हैं। आगमों के सिद्धान्त के गूढ़ विषयों को समझाने के लिए प्रतीक, दृष्टान्त, रूपक तथा कथा का सहारा लिया गया है। उपमानों, प्रतीकों आदि से कथा का विकास होने की परम्परा वेदों, महाभारत एवं बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में भी रही है। किन्तु जैन साहित्य ने इसमें विशेष रुचि ली है।

आगमिक कथाओं का विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। कथा का विकास का प्रथम स्तर असम्भव से दुर्लभ की ओर जाने का है। आगम कथा कहती है कि संसार में रहते हुए मुक्ति का अनुभव असम्भव है। इससे मुक्ति के प्रति उत्कण्ठा जागृत होती है। तक कथाश्रोता पूछता है कि क्या सचमुच संसारी को मुक्ति नहीं है ? इसके उत्तर में कथावाचक कहता है- 'नहीं, उस व्यक्ति (तीर्थंकर) जैसे कोई तप करे तो उसे मुक्ति का अनुभव हो सकता है।' इससे मुक्ति असम्भव से दुर्लभ की कोटि में आ जाती है। यह जिनों का आदर्शमय जीवन प्रस्तुत करने की भूमिका है।

इसके उपरान्त अपूर्व वैभव का त्याग, कठिन व्रतों का पालन, तपश्चर्या, ध्यान, योग द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति की कथा मुक्ति के मार्ग को दुर्लभ से संभव की कोटि में लाती है। यह कथा के विकास की दूसरी अवस्था है। इसे मुनिधर्म विवेचन के लिए धरातल की संज्ञा दी जा सकती है।

मुक्ति तपश्चर्या से सम्भव है, यह बात समझ में आने के बाद उस तपश्चर्या को सम्भव से सुलभ बनाने के लिए और कथाएं कही जाती हैं। नैतिक आचरण, श्रावकधर्म, दैनिक अनुष्ठान, कर्म-सिद्धान्त आदि की कथाएँ मुक्ति को सम्भव से सुलभ बनाकर उसमें जन-सामान्य की रुचि उत्पन्न कर देती हैं। इसे कथा के विकास की तीसरी अवस्था कह सकते है।

कथा के विकास की चौथी अवस्था प्रतिपाद्य को सुलभ से अनुकरणीय बनाने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। इस धरातल पर कथाकार कहता है कि तुम देखो, उस श्रावक ने ऐसा-ऐसा किया और उसका यह फल पाया। तुम यदि ऐसा करोगे तो तुम्हें भी वह फल मिलेगा। जैन आगमों की अधिकांश कथाएँ इसी कोटि की हैं। इस विकास क्रम में अन्य कथा साहित्य एवं समकालीन जन-जीवन ने भी प्रभाव डाला है।

आगमकालीन कथाओं की प्रवृत्तियों के विश्लेषण के सम्बन्ध में डा. ए.एन. उपाध्ये का यह कथान ठीक ही प्रतीत होता है- "आरम्भ में, जो मात्र उपमाएँ थीं, उनको बाद में व्यापक रूप देने और धार्मिक मतावलम्बियों के लाभार्थ उनसे उपदेश ग्रहण करने के निमित्त उन्हें कथात्मक रूप प्रदान किया गया है। इन्हीं आधारों पर उपदेशप्रधान कथाएँ वर्णात्मक रूप में या जीवन्त वार्ताओं के रूप में पल्लवित की गयी हैं।"[1] अतः आगमिक कथाओं की प्रमुख विशेषता उनकी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशात्मक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। किन्तु क्रमशः इसमें विकास होता गया है। उपदेश, अध्यात्म, चरित, नीति से आगे बढ़कर कुछ आगमों की कथाएँ शुद्ध लौकिक और सार्वभौमिक हो गयी हैं। यही कारण है कि इन कथाओं को यदि स्वरूप-मुक्त कहा जाय तो उनके साथ अधिक न्याय होगा। आल्सडोर्फ ने आगमिक कथाओं की शैली को "टेलिग्राफिक-स्टाइल" कहा है।[2] किन्तु यह शैली सर्वत्र लागू नहीं होती है।

आगम ग्रन्थों की कथाओं की विषय-वस्तु विविध है। अतः इन कथाओं का सम्बन्ध परवर्ती कथा-साहित्य से बहुत समय से जुड़ा रहा है।[3] साथ ही देश की अन्य कथाओं से भी आगमों की कथाओं का सम्बन्ध कई कारणों से बना रहा है। डा. विन्टरनित्स ने कहा है कि "श्रमण साहित्य का विषय मात्र ब्राह्मण, पुराण और चरित कथाओं से ही नहीं लिया गया है, अपितु लोक कथाओं एवं परी कथाओं आदि से भी गृहीत है।"[4] प्रो. हर्टेल भी जैन कथाओं के वैविध्य से प्रभावित है। उनका कहना है कि "जैनों का बहुमूल्य कथा साहित्य पाया जाता है। इनके साहित्य में विभिन्न प्रकार की कथाएँ उपलब्ध हैं। जैसे- प्रेमाख्यान, उपन्यास, दृष्टान्त, उपदेशप्रद पशु कथाएँ आदि। कथाओं के माध्यम से इन्होंने अपने सिद्धान्तों को जन-साधारण तक पहुँचाया है।[5]

आगम ग्रन्थों की कथाओं की एक विशेषता यह भी है कि वे प्रायः यथार्थ से जुड़ी हुई हैं। उनमें अलौकिक तत्वों एवं भूतकाल की घटनाओं के कम उल्लेख हैं। कोई भी कथा वर्तमान के कथानायक के जीवन से प्रारम्भ होती है। फिर उसे बताया जाता है कि उसके वर्तमान जीवन का सम्बन्ध भूत एवं भविष्य से क्या हो सकता है। ऐसी स्थिति में श्रोता की कथा के पात्रों से आत्मीयता बनी रहती है। जबकि वैदिक कथाओं की अलौकिकता चमत्कृत तो करती है, किन्तु उससे निकटता का बोध नहीं होता है।[6] बौद्ध कथाओं में भी वर्तमान की कथा का अभाव खटकता है। उनमें बोधिसत्व के माध्यम से बौद्ध सिद्धान्त अधिक हावी हैं।[7] यद्यपि इन तीनों परम्पराओं में किसी प्राचीन सामान्य स्रोत से भी कथाएँ ग्रहण की गयी हैं, जिसे विन्तरनित्स ने "श्रमणकाव्य" कहा है।[8]

सांस्कृतिक मूल्यांकन :

प्राकृत आगम ग्रन्थों मे प्राप्त कथाएँ केवल तत्व-दर्शन को समझने के लिए ही नहीं, अपितु तत्कालीन समाज और संस्कृति को जानने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि आगम ग्रन्थों का कोई एक रचनाकाल निश्चित नहीं है। महावीर के निर्वाण के बाद वलभी में सम्पन्न आगम-वाचना के समय तक इन आगमों का स्वरूप निश्चित हुआ है।[8] अतः ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ईसा की 5वीं शताब्दी तक लगभग एक हजार वर्षों का जन-जीवन इन आगमों में अंकित हुआ है। आगमों के व्याख्या साहित्य में विभिन्न सांस्कृतिक सन्दर्भों को और अधिक स्पष्ट किया गया है। आगम ग्रन्थों में प्राप्त समाज, संस्कृति एवं राजनीति आदि की सामग्री का महत्व इसलिए और अधिक है कि इसे युग के अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य कम उपलब्ध हैं। अतः इन्हीं साहित्यिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। जैन-मुनियों द्वारा लिखे गये अथवा संकलित किये गये इन आगम ग्रन्थों में अतिशयोक्तियाँ होते हुए भी यथार्थ चित्रण अधिक है, जो सांस्कृति के मूल्यांकन के लिए आवश्यक होता है। इन आगमिक कथाओं में प्राप्त सांस्कृतिक सामग्री के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल्यांकन के लिए सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है तथा समकालीन अन्य परम्परा के साहित्य की जानकारी रखना भी जरूरी है। यहाँ पर कुछ सांस्कृतिक सन्दर्भों का मात्र दिग्दर्शन ही किया जा सकता है।

भाषात्मक दृष्टि :

महावीर के उपदेशों की भाषा को अर्धमागधी कहा गया है। अतः उनके उपदेश जिन आगमों में संकलित हुए है उनकी भाषा भी अर्धमागधी प्राकृत है। किन्तु इस भाषा में महावीर के समय की ही अर्धमागधी भाषा का स्वरूप सुरक्षित नहीं है, अपितु ईसा की 5वीं शताब्दी तक प्रचलित रहने वाली सामान्य प्राकृत महाराष्ट्री के रूप भी इसमें मिल जाते हैं। कुछ आगम ग्रन्थों में अर्धमागधी में वैदिक भाषा के तत्व भी सम्मिलित हैं। 'गच्चइंसु' आदि क्रियाओं में 'इंसु' प्रत्यय एवं ग्रहण के अर्थ में 'घेप्पइ' क्रियाओं का प्रचलन आदि आगमों में वैदिक भाषा का प्रभाव है। मागधी एवं शौरसेनी प्राकृत के भी कुछ छुटपुट प्रयोग इसमें प्राप्त हैं। सम्भवतः अर्धमागधी भाषा के गठन की प्रवृत्ति के कारण यह हुआ है। आगमों की भाषा को समझने के लिए कुछ भाषात्मक सूत्र आगमों में ही प्राप्त हैं। उन्हें समझने की आवश्यकता है।[9]

इन आगमिक कथाओं की भाषा के स्वरूप एवं उसके स्तर को तय करने के लिए व्याख्या साहित्य में की गई व्युत्पत्तियों को भी देखना आवश्यक है। प्रकाशित संस्करणों के साथ ही ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों पर अंकित टिप्पण भी आगमों की भाषा को स्पष्ट करते हैं। पाठ-भेदों का तुलनात्मक अध्ययन भी इसमें मदद करेगा।

इन कथाओं के कई नायकों को बहुभाषाविद् कहा गया है। ज्ञाताधर्मकथा में मेघकुमार की कथा में अठारह विविध प्रकार की देशी भाषाओं का विशारद उसे कहा गया है।[10] किन्तु इन भाषाओं के नाम आगम ग्रन्थों में नहीं मिलते। व्याख्या साहित्य में हैं। कुवलयमालाकहा में इन भाषाओं के नामों के साथ-साथ उनके उदाहरण भी दिये गये हैं। इन कथाओं में विभिन्न प्रसंगों में कई देशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। आगम शब्द-कोश में ऐसे शब्दों का संकलन कर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जाना चाहिए।

णिंदू उल्लपडसाडया, वरइ, जासुमणा, रत्तबंधुजीवग, सरस, महेलियावज्जं, थंडिल्लं, अवओडय-बंधगयं, डिंभय, इंददट्ठाण आदि शब्द अन्तकृद्दशा की कथाओं में आये हैं।[11] इसी तरह अन्य कथाओं में भी खोजे जा सकते हैं। कुछ शब्द व्याकरण की दृष्टि से नियमित नहीं हैं तथा उनमें कारकों की व्याख्या नहीं है।[12] ये सब दृष्टियाँ इन कथाओं के भाषात्मक अध्ययन में प्रवृत्त होने की हो सकती है। पालि, संस्कृत के शब्दों का इन कथाओं में प्रयोग भी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करेगा।

काव्यतत्व :

आगम ग्रन्थों की कथाओं में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। कथाकारों के अधिकांश वर्णन यद्यपि वर्णक के रूप में स्थिर हो गये थे। नगर- वर्णन, सौंदय-वर्णन आदि विभिन्न कथाओं में एक से प्राप्त होते हैं अतः स्मरण की सुविधा के कारण उनकी पुनरावृत्ति न करके "जाव" पद्धति द्वारा उनका उपयोग किया जाता रहा है। किन्तु कुछ वर्णन विशुद्ध रूप से साहित्यिक हैं। संस्कृत के गद्य साहित्य की सौन्दर्य-सुषमा उनमें देखी जा सकती है। प्राचीन भारतीय गद्य साहित्य के उद्भव एवं विकास के अध्ययन के लिए इन कथाओं के गद्यांश मौलिक आधार माने जा सकते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मेघकुमार की कथा में अंकित यह प्रासाद-वर्णन द्रष्टव्य है-

अब्भुग्गयभूसियपहसिए विव मणि-कणग-रयणभत्ति-चित्ते वाउद्धयविजय- वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिए तुंगे गगणतल-मभिलंघणमाणसिहरे जालंतर-रयणपंजरुम्मिलिएव्व मणि-कणगथूभियाए वियसिय-सतवत्त-पुण्डरीए तिलय-रयणद्ध चंदच्चिए णाणामणि-मय-दामालंकिए अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्ज-रुइल-वालुया पत्थरे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाइए-जाव-पडिरूवे।

– ध.क. श्रमणकथा, मूल, पृ.7१

उत्प्रेक्षाओं का इसमें सटीक प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार धन्य मुनि की तपश्चर्या के वर्णन में भी काव्यत्व संजोया हुआ है। कठोर तपश्चर्या से धन्यमुनि का शरीर इतना सूख गया था कि उनकी पसलियों को रुद्राक्ष की माला के मनकों की तरह गिना जा सकता था, उनके वक्षस्थल की हड्डियाँ गंगा की तरंगों की तरह स्पष्ट दिखायी देती थीं। सूखे सर्प की तरह भुजाएं एवं घोड़े की लगाम की तरह काँपने वाले उनके अग्रहस्त थे तथा कम्पन वातरोग के रोगी की तरह उनका सिर कांपता रहता था। यथा-

अक्खसुत्तमाला ति व गणेज्जमाणेहि पिट्टकरंडगसंधीहं, गंगातरगंभूएणं उदकडगदेस-भाएणं, सुक्कसप्पसमाणाहिं बाहाहिं, सिढिल-कडाली विवलंबतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइओ विव वेवमाणीए सीसघडीए। –ध.क. श्रमणकथा, पृ. 102 पैरा. 412

इन कथाओं में उपमाओं का बहुत प्रयोग हुआ है। ऋषभदेव के मुनिरूप का वर्णन बहुत ही काव्यात्मक है। उसमें 39 उपमाएँ दी गयी हैं। यथा- शुद्ध सोने की तरह रूप वाले, पृथ्वी की तरह सब स्पर्शों को सहने वाले, हाथी की तरह वीर, आकाश की तरह निरालम्ब, हवा की तरह निर्द्वन्द्व आदि।[13]

इन कथाओं के गद्य में जितना काव्य तत्व है, उतना ही पद्य-भाग भी काव्यात्मक है। उत्तराध्ययनसूत्र की कथाएँ पद्य में ही वर्णित हैं। उसमें अनेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।[14] कुछ उपमाएं एवं दृष्टान्त प्रस्तुत हैं[15]

उपमाएँ	दृष्टान्त
आसीविसोवमा (9.53)	दावाग्नि का दृष्टान्त 14.42)
जहेह सीहो व मियं गहाय (13.22)	पक्षी का दृष्टान्त 14.46)
पंखा विहूणो व्व जहेह पक्खी 14.30)	मृग (19.77)
विवन्तसारो वणिओ व्व पोए (14.30)	गोपाल (22.45)
गुरुओ लोह भारोव्व (19.35)	पाथेय (19.18)
सत्थं जहा परमातिक्ख (20.20)	जलता हुआ घर (19.22)
सिरे चूडामणी जहा (22.10)	तीन वणिक (7.14)

इसी तरह की उपमाएँ आदि यदि सभी कथाओं में एकत्र कर अनका तुलनात्मक अध्ययन या जाय तो भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास के लिए कई नए उपमान एवं बिम्ब प्राप्त हो कते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथानक-रूढ़ियाँ एवं मोटिफ्स :

कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उनके मोटिफ्स एवं कथानक रूढ़ियों का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। इससे कथा के उत्स एवं विकास को खोजा जा सकता है।[16] पालि-प्राकृत कथाओं में कई समान कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। यद्यपि विदेशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया है। किन्तु भारतीय कथाओं की पृष्ठभूमि में अभी भी काम किया जाना शेष है।

आगम ग्रन्थों में यद्यपि कई कथाएँ प्रयुक्त हुई हैं। उनके व्यक्तिवाचक नामों की संख्या हजार भी हो सकती है। किन्तु उनमें जो मोटिफ्स प्रयुक्त हुए हैं वे एक सौ के लगभग होंगे। उन्हीं की पुनरावृत्ति कई कथाओं में होती रहती हैं। कथाओं के कुछ अभिप्राय द्रष्टव्य हैं-

1. शिष्य की जिज्ञासा का गुरु द्वारा समाधान
2. माता द्वारा स्वप्नदर्शन और पुत्रजन्म
3. गर्भिणी स्त्री का दोहद
4. मुनि-उपदेश से वैराग्य
5. माता-पिता और पुत्र के बीच वैराग्य सम्बन्धी संवाद
6. पूर्वभव-कथन एवं जाति-स्मरण
7. दीक्षा एवं उसके बाद सद्गति
8. साधना से स्खलन और पुनः स्थिरता
9. दो प्रतिपक्षी चरित्रों का द्वन्द्व
10. वैराग्य की परीक्षा में खरा उतरना
11. अन्य धर्मों से अपने धर्म की श्रेष्ठता
12. पुत्र-पुत्रियों की बुद्धि-परीक्षा
13. मित्रों के बीच मायाचार की घटना
14. हिंसा टालने के लिए युक्ति
15. रूप-वर्णन आदि सुनकर आसक्ति
16. दूसरों द्वारा सन्देश और उनका अपमान
17. सागर-यात्रा में नौका-भग्न
18. निषिद्ध वस्तु के प्रति आकर्षण
19. असम्भव को सम्भव कर दिखाना
20. सन्तान की अदला-बदली
21. पुरुष को नारी द्वारा उद्बोधन
22. सार्थवाह का व्यापार
23. मुनि के प्रति घृणा व निन्दा से जन्मान्तर में कलंक और क्लेश
24. आपत काल में नियमों की छूट
25. परिवार के सदस्यों का एक दूसरे के लिए त्याग[17]
26. अतिवैभव वाले नायक का त्याग
27. गुरु की न्याय-प्रियता से धर्म-प्रभावना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

28. तपश्चर्या में दैवी शक्तियों द्वारा विघ्न
29. साधक की अडिगता
30. गुणी एवं साधक की पत्नी का विपरीत आचरण
31. नारी-हठ के दुष्परिणाम[18]
32. कठिनता से प्राप्त पुत्र का गृह-त्याग
33. पूर्व वैरी द्वारा साधना में उपसर्ग
34. सामूहिक अनाचार के प्रति विद्रोह
35. आराधक की निष्क्रियता के प्रति आक्रोश
36. हिंसक प्रवृत्ति की अति से आतंक
37. साधारण नायक का साहसी होना
38. क्रूर व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन[19]
39. तपश्चर्या में शरीर का सूखना
40. साधना की पराकाष्ठा से भव-छेदन[20]
41. वर्तमान जन्म के दुःख को पूर्वजन्मों के कर्मों का फल मानना
42. बड़ी संख्या वाले शिष्यों के नायक को अपनी ओर झुकाना
43. राजा द्वारा अपराधी को दण्ड देना
44. दण्ड पाये हुए अपराधी के प्रति दण्डक की करुणा
45. वध्यपुरुष के पूर्वभव का कथन
46. भाई-बहन में पति-पत्नि का सम्बन्ध
48. संतान प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न
49. सौतों के प्रति दुर्व्यवहार
50. सास-बहू में डाह[21]

इस प्रकार यदि आगमिक कथाओं का एक प्रामाणिक मोटिफ्स-इन्डेक्स तैयार किया जाय तो इन कथाओं की मूल भावना को समझने में तो सहयोग मिलेगा ही, उनके विकास-क्रम को भी समझा जा सकेगा।

सामाजिक जीवन :

आगम-ग्रन्थों की इन कथाओं में मौर्य-युग एवं पूर्व-गुप्तयुग के भारतीय जीवन का चित्रण हुआ है। तब तक चतुर्वर्ण-व्यवस्था व्यापक हो चुकी थी। इन कथाओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के भी कई उल्लेख हैं। ब्राह्मण के लिए माहण शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है। महावीर को भी माहण और महामाहण कहा गया है। उत्तराध्ययन में ब्राह्मणों के यज्ञों का भी उल्लेख है, जिन्हें आध्यात्मिक यज्ञों में बदलने की बात इन जैन कथाकारों ने कही है। क्षत्रियों के लिए 'खत्तिय' शब्द का यहाँ प्रयोग हुआ है। इन कथाओं में अनेक क्षत्रिय राजकुमारों की शिक्षा एवं दीक्षा का भी वर्णन है। वैश्यों के लिए इभ्य, श्रेष्ठी, कौटुम्बिक, गाहावइ आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। हरिकेश चांडाल एवं चित्त-सम्भूत मातंगों की कथा के माध्यम से एक ओर जहाँ उनके विद्या-पारंगत एवं धार्मिक होने की सूचना है वहाँ समाज में उनके प्रति अस्पृश्यता का भाव भी स्पष्ट

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है। चाण्डालों के कार्यों का वर्णन भी अन्तकृद्दशा की एक कथा में मिलता है।

इन कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन पारिवारिक जीवन सुखी था। रोहिणी की कथा संयुक्त परिवार के आदर्श को उपस्थित करती है, जिसमें पिता मुखिया होता था (ज्ञाता.7)। पिता को ईश्वर तुल्य मानकर प्रातः उसकी चरण-वंदना की जाती थी (ज्ञाता.1)। संकट उपस्थित होने पर पुत्र अपने प्राणों की आहुति भी पिता के लिए देने को तैयर रहते थे (ज्ञाता.18)। अपनी संतान के लिए माता के अटूट प्रेम के कई दृश्य इन कथाओं में हैं। मेघकुमार की दीक्षा की बात सुनकर उसकी माता अचेत हो गयी थी। राजा पुणनन्दी की कथा से ज्ञात होता है कि वह अपनी माँ का अनन्य भक्त था। चूलनीपिता की कथा में मातृ-वध का विघ्न उपस्थित किया है। उसमें माता भद्रा सार्थवाही के गुणों का वर्णन है।

आगमों की कथाओं में विभिन्न सामाजिक जनों का उल्लेख है। यथा- तलवार, मांडलिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, महासार्थवाह, महागोप, सायांत्रिक, नौवणिक्, सुवर्णकार, चित्रकार, गाहावइ, सेवक आदि। गजसुकुमार की कथा से ज्ञात होता है कि परिवार के सदस्यों के नामों में एकरूपता रखी जाती थी। यथा- सोमिल पिता, सोमश्री माता एवं सोमा पुत्री। जन्मोत्सव मनाने की पुरानी प्रथा है, उसमें उपहार भी दिया जाता था। राजकुमारी मल्ली की जन्मगांठ पर श्रीदामकाण्ड नामक हार दिया गया था। जन्मगांठ को वहाँ 'संवच्छरपडिलेहणयं' कहा गया है। इसी प्रकार स्नान आदि करने के उत्सव भी मनाये जाते थे। चातुर्मासिक स्नान-महोत्सव प्रसिद्ध था।

इन कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय समाज सेवा के अनेक कार्य किये जाते थे। नंद मणिकार की कथा से स्पष्ट है कि उसने जनता के लिए एक ऐसी प्याऊ (वापी) बनवायी थी, जहाँ छायादार वृक्षों के वनखण्ड, मनोरंजक चित्रसभा, भोजनशाला, चिकित्सा-शाला, अलंकार-सभा आदि की व्यवस्था थी। समाज-कल्याण की भावना उस समय विकसित थी। राजा प्रदेशी ने भी श्रावक बनने का निश्चय करके अपनी सम्पत्ति के चार भाग किये थे। उनमें से परिवार के पोषण के अतिरिक्त एक भाग सार्वजनिक हित के कार्यों के लिए था, जिससे दानशाला आदि स्थापित की गयी थी। इन कथाओं में पात्रों के अपार वैभव का वर्णन है। देशी व्यापार के अतिरिक्त विदेशों से व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। अतः समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वाणिज्य-व्यापार एवं कृषि आदि के इतिहास के लिए इन कथाओं में पर्याप्त सामग्री प्राप्त है। समुद्र-यात्रा एवं सार्थवाह-जीवन के सम्बन्ध में तो इन जैन कथाओं से ऐसी जानकारी मिलती है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।[23] बुद्धकालीन समाज की तुलना के लिए भी यह सामग्री महत्वपूर्ण है।

राज्य-व्यवस्था :

प्राकृत की इन कथाओं में राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी विविध जानकारी उपलब्ध है। चम्पा के राजा कूणिक (अजातशत्रु) की कथा से उसकी समृद्धि और राजकीय गुणों का पता चलता है। राज्यपद वंश-परम्परा से प्राप्त होता था। राजा दीक्षित होने के पूर्व अपने पुत्र को राज्य-गद्दी पर बैठाता था। किन्तु उदायण राजा की कथा से ज्ञात होता है कि उसने अपने पुत्र के होते हुए भी अपने भानजे को राजपद सौंपा था। नन्दीवर्धन राजकुमार की कथा से ज्ञात होता है कि वह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र करके राज्य पाना चाहता था। राजभवनों एवं राजा के अन्तःपुरों के भीतरी जीवन के दृश्य भी इन कथाओं से प्राप्त हैं। अन्तकृद्दशा में कन्या-अन्तःपुर का भी उल्लेख है। राज्य-व्यवस्था में राजा, युवराज, मन्त्री, सेनापति, गुप्तचर, पुरोहित, श्रेष्ठी आदि व्यक्ति प्रमुख होते थे। डा. जगदीश चन्द्र जैन ने आगम कथा-साहित्य के आधार पर प्राचीन राज्य-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है। अपराध एवं दण्ड व्यवस्था के लिए इस साहित्य में इतनी सामग्री उपलब्ध है कि उससे प्राचीन दण्ड-व्यवस्था पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। जैन कथाकारों ने राजकुलों एवं राजाओं का अपनी कथाओं में उल्लेख प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किया है। किन्तु कई स्थानों पर तो उनका ऐतिहासिक महत्व भी है।

धार्मिक मत-मतान्तर :

आगमों की इन कथाओं में जैन धर्म एवं दर्शन के विविध आयाम तो उद्घाटित हुए हैं, साथ ही अन्य धर्मों एवं मतों के सम्बन्ध में इनसे विविध जानकारी प्राप्त होती है। आद्रककुमार की कथा से शाक्य श्रमणों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। धन्ना सार्थवाह की कथा में विभिन्न विचारधाराओं को मानने वाले परिव्राजकों के उल्लेख हैं। यथा- चरक, चौरिक, चर्मखंडिक, मिच्छुण्ड, पण्डुरंग, गौतम, गौवृती गृहधर्मी, धर्म-चिन्तक, अविरुद्ध, बुद्ध, श्रावक, रक्तपट आदि।[25] व्याख्या साहित्य में जाकर इनकी संख्या और बढ़ जाती है।[26] इन सबकी मान्यताओं को यदि व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाय तो कई नई धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं का पता चल सकता है। संकट के समय में कई देवताओं को लोग स्मरण करते थे। उनके नाम इन कथाओं में मिलते हैं।[27] आगे चलकर तो एक ही प्राकृत कथा में विभिन्न धार्मिक एवं उनके मत एकत्र मिलने लगते हैं।[28] प्राकृत की इन कथाओं में लोक-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः इनमें लोक देवताओं और लौकिक धार्मिक अनुष्ठानों की भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त है।[29] यद्यपि आगम साहित्य में प्राप्त जैन दर्शन के स्वरूप पर पं. मालवणिया जी ने प्रकाश डाला है।[30] किन्तु इन कथाओं की भी धर्म और दर्शन की दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए।

स्थापत्य एवं कला :

आगमों की इन कथाओं में कुछ कथा-नायकों की गुरुकुल-शिक्षा के वर्णन हैं। मेघकुमार की कथा में 72 कलाओं के नामोल्लेख हैं। अन्य कथाओं में भी इनका प्रसंग आया है। श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने इन सभी कलाओं का परिचय अपनी भूमिका में दिया है। इन 72 कलाओं के अन्तर्गत भी संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकला, आदि प्रमुख कलाएं हैं, जिनमें जीवन में बहुविध उपयोग होता है। इस दृष्टि से राजा प्रदेशी की कथा अधिक महत्वपूर्ण है। उसमें बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियों का वर्णन है। टीका साहित्य में उनके स्वरूप आदि पर विचार किया गया है।[31] ज्ञाताधर्मकथा में मल्ली की कथा चित्रकला की प्रभूत सामग्री उपस्थित करती है। मल्ली की स्वर्णमयी प्रतिमा का निर्माण मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। स्थापत्यकला की प्रचुर सामग्री राजा प्रदेशी की कथा में प्राप्त है। राजाओं के प्रासाद-वर्णनों एवं श्रेष्ठियों के वैभव के दृश्य उपस्थित करने आदि में भी प्रासादों एवं क्रीड़ागृहों के स्थापत्य का वर्णन किया गया है। इस सब सामग्री को एक स्थान पर एकत्र कर उसको प्राचीन कला के सन्दर्भ में जाँचा-परखा जाना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। यक्ष-प्रतिमाओं और यक्ष-गृहों के सम्बन्ध में तो जैन कथाएं ऐसी सामग्री प्रस्तुत करती हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

भौगोलिक विवरण :

प्राकृत की इन कथाओं का विस्तार केवल भारत में ही नहीं, अपितु बाहर के देशों तक रहा है। इन कथाओं के कथाकार स्वयं सारे देश को अपने पदों से नापते रहे हैं। अतः उन्होंने विभिन्न जनपदों, नगरों, ग्रामों, वनों एवं अटवियों की साक्षात् जानकारी प्राप्त की है। उसे ही अपनी कथाओं में अंकित किया है। कुछ पौराणिक भूगोल का भी वर्णन है, किन्तु अधिकांश देश की प्राचीन राजधानियों, प्रदेशों, जनपदों एवं नगरों आदि से सम्बन्धित वर्णन ही हैं। अंगदेश, काशी, इक्ष्वाकु, कुणाल, कुरु, पांचाल, कौशल आदि जनपदों, अयोध्या, चम्पा, वाराणसी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, द्वारिका, मिथिला, साकेत, राजगृह आदि नगरों के उल्लेखों को यदि सभी कथाओं से एकत्र किया जाय तो प्राचीन भारत के नगर एवं नागरिक जीवन पर नया प्रकाश पड़ सकता है। आधुनिक भारत के कई भौगोलिक स्थानों के इतिहास में इससे परिवर्तन आने की गुंजाइश है। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने कार्य भी किया है। किन्तु उसमें इन कथाओं की सामग्री का भी उपयोग होना चाहिए।[32] जैन कथाओं के भूगोल पर स्वतन्त्र पुस्तक भी लिखी जा सकती है।

सन्दर्भ

1. उपाध्ये, ए.एन.: बृहत्कथा-कोश भूमिका, पृ.8।
2. प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ.168 (फुटनोट)।
3. जैन, जगदीशचन्द्र: "दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ" पुस्तक द्रष्टव्य।
4. "द जैनस् इन द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर," सं.- मुनि जिनविजय, पृ. 5. प्रो. हर्टेल, "आन द लिटरेचर आफ द श्वेताम्बराज् आफ गुजरात" पृ.6।
6. जैन, जगदीशचन्द्र: प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ.8।
7. प्रो. हर्टेल, वही, पृ.7-8।
8. देखें- 'सम प्रोब्लम्स आफ इण्डियन लिटरेचर' पृ. 21-40।
9. महाप्रज्ञ नथमल मुनि: "आर्ष प्राकृत, स्वरूप और विश्लेषण" नामक निबन्ध, संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा, छापर 1981।
10. अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासा विसारए- ध. क. श्रमणकथा, मूल, पृ. 78, पैरा 326।
11. साध्वी दिवयप्रभा= अन्तकृद्दशा, ब्यावर (विवेचन) द्रष्टव्य।
12. मुनि नथमल: उत्तराध्ययन- एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 478 आदि।
13. ध.क. उत्तम. कहा. पृ. 20-29।
14. जैन, सुदर्शन लाल: उत्तराध्ययनसूत्र- एक परिशीलन, वाराणसी, पुस्तक द्रष्टव्य।
15. विस्तार के लिए देखें- "उत्तराध्ययन- एक समीक्षात्मक अध्ययन", पृ.461।
16. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पुस्तक द्रष्टव्य।
17. ज्ञाताधर्मकथा की कथाओं के प्रमुख मोटिफ्स (अभिप्राय) (1-25)।
18. उवासगदसाओं की कथाओं के प्रमुख अभिप्राय (26-31)।
19. अन्तकृद्दशा की कथाओं के प्रमुख अभिप्राय (32-38)।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

20. अनुत्तरौपपितिक दशा के कुछ अभिप्राय (39-40)।
21. विपाकसूत्र की कथाओं के प्रमुख मोटिफ्स (41-50)।
22. जगदीशचन्द्र: जैन आगम सा. में भा. समाज, पृ. 119 आदि।
23. मोतीचन्द्र: सार्थवाह, अध्याय 9, पृ. 158 आदि।
24. सिंह, मदनमोहन: बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना, 1972, पुस्तक दृष्टव्य।
25. ज्ञाताधर्मकथा (भूमिका, पृ. 35-38)
26. डा. जैन: वही, पृ. 413-20 आदि।
27. ज्ञाताधर्मकथा, पृ.237।
28. कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.382।
29. डा. जैन: वही, पृ.429 आदि।
30. (क) आगमयुग का जैन दर्शन, आगरा, 1966
(ख) जैन दर्शन का आदिकाल, अहमदाबाद, 1980 पुस्तकें दृष्टव्य।
31. डा. जैन: वही, पृ.325 आदि।
32. उत्तराध्ययनसूत्र- एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.371 आदि।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ

प्राकृत कथाओं के भेद-प्रभेद

प्राकृत साहित्य विभिन्न विधाओं में उपलब्ध है। उनमें कथा की विधा अधिक समृद्ध हुई है। प्राकृत कथा साहित्य का उद्भव यद्यपि आगम साहित्य में ही हो चुका था, किन्तु उसका विकास व्याख्या साहित्य और स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थों में हुआ है। ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदशाओं, विपाकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगम ग्रन्थों की कथाएँ संक्षिप्त कथाएँ हैं, जबकि उत्तराध्ययनटीका, आवश्यकचूर्णी, बृहत्कल्पभाष्य आदि की कथाएँ विस्तार लिए हुए हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी से ही स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा, रयणसेहरीनिवकहा आदि प्राकृतकथा-ग्रन्थों की परम्परा लम्बी है। प्राकृत के इस विशाल कथा साहित्य में प्राकृत कथाओं के कई रूप प्राप्त होते हैं, जो प्राकृत कथा के भेद-प्रभेदों की जानकारी के लिए आधारभूत हैं। स्वयं कुछ प्राकृत कथाकारों ने प्राकृत कथा के विभिन्न रूपों की चर्चा की है। उसी आधार पर प्राकृत कथाओं के भेद-प्रभेदों को संक्षेप में ज्ञात किया जा सकता है।

सामान्य कथा :

आचार्य हरिभद्रसूरि ने दशवैकालिकसूत्र पर जो वृत्ति लिखी है उसमें उन्होंने सामान्य कथा के तीन रूपों की चर्चा की है:- (1) अकथा, (2) कथा, (3) विकथा।[1] इनका स्वरूप बतलाते हुए वे कहते हैं कि अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के द्वारा कही गयी संसार में परिभ्रमण में सहायक होने वाली कथा अकथा है। कथा वह कहलाती है जिसका निरूपण तप, संयम, दान, शील आदि लोककल्याण के कार्यों हेतु अथवा विचार-शोधन के लिए किया जाता है। विद्वान् ऐसी कथा को सत्कथा भी कहते हैं।[2] प्रमाद, कषाय, रागद्वेष, स्त्री, भोजन, चोर आदि से संबंधित एवं 'समाज' और राष्ट्र को विकृत करने वाली कथा **विकथा** कहलाती है। अकथा और विकथा भौतिकता और कलुषित विचारों की ओर ले जाने वाली कथाएँ हैं। अतः सत्कथा का निरूपण करना और स्वाध्याय करना ही श्रेयस्कर है।

विषयगत कथाएँ :

प्राकृत कथा साहित्य के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि कथा के भेद-प्रभेदों के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों के जो विचार प्राप्त होते हैं उनमें कथाओं का वर्गीकरण विषय, पात्र, भाषा और शैली के आधार पर किया गया है। अतः इसी क्रम से कथाओं के भेदों की जानकारी प्राप्त करना इसी क्रम उपयोगी होगा। हरिभद्रसूरि ने विषय की दृष्टि से कथाओं के भेद का निरूपण दो स्थानों पर किया है। समराइच्चकहा में वे कहते हैं कि कथाएँ चार प्रकार की होती हैं। जैसे- (1) अर्थकथा, (2) कामकथा, (3) धर्मकथा (4) संकीर्णकथा।[3] यही बात उन्होंने दशवैकालिकवृत्ति में भी कही है कि कथा चार प्रकार की है- अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रितकथा। इन में प्रत्येक कथा के अनेक भेद प्राप्त होते हैं। यथा-

अत्थकहा कामकहा धम्मकहा चेव मीसिया य कहा।.
एत्तो एक्केक्कावि य णेगविहा होई नायत्वा।।

-दश. हरि. वृ. गाथा 188, पृ.212

अर्थकथा - विषय की दृष्टि से वर्गीकृत कथाओं के इन भेदों का स्वरूप प्राकृत कथाकारों ने स्पष्ट किया है। दशवैकालिकवृत्ति में कहा गया है कि जिस कथा में विद्या, शिल्प, अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न उपाय, अर्थसंचय के लिए कुशलता, साम, दण्ड और भेद आदि का वर्णन तथा विभिन्न प्रकार के व्यंग्य इत्यादि किये गए हों वह कथा अर्थकथा कहलाती है।[4] समराइच्चकहा में अर्थप्राप्ति के विभिन्न साधनों का निरुपण करने वाली कथा को अर्थकथा कहा गया है। इन दोनों उल्लेखों से स्पष्ट है कि अर्थकथा में आर्थिक और राजनीतिक जीवन का घटनाचक्र रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाता है।

कामकथा - हरिभद्रसूरि का कथान है कि रूप-सौन्दर्य, युवावस्था, वेशभूषा, चतुरता, विभिन्न विषयों की शिक्षा, देखे गए, सुने गए और अनुभव में आए विभिन्न विषयों का परिचय प्रस्तुत करने वाली कामकथा है। यथा-

रूवं वओ य वेसो दक्खत्तं सिक्खियं च विसएसु।
दिठ्ठं सुयमणुभूयं च संथवो चेव कामकहा।।

-दश. गाथा. 192, पृ.218

समराइच्चकहा में इसे और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि रूप-सौंदर्य के अतिरिक्त यौन समस्याओं का विश्लेषण, अनुराग, प्रेम व्यापार, भावना, मिलन एवं विरह आदि का रोचक वर्णन कामकथाओं में किया जाता है। इन्हीं कामकथाओं से प्रेमकथाओं का विस्तार प्राकृत कथाओं में देखने को मिलता है। सौन्दर्य चित्रण एवं प्रकृति-चित्रण आदि के वर्णन भी कामकथाओं में प्राप्त होते हैं।

धर्मकथा - धर्म से सम्बन्धित विषयों का निरूपण करने वाली कथा धर्मकथा कहलाती है। जैन धर्म में धर्म के जो दशलक्षण कहे गए हैं और गृहस्थ धर्म का जो निरूपण किया गया है उसी के आधार पर हरिभद्रसूरि ने कहा है कि जिस कथा में क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस धर्मों, अणुव्रतों, देशव्रतों और शिक्षाव्रतों आदि का बहुलता से वर्णन हो वह धर्मकथा है।[5] उद्योतनसूरि ने नाना जीवों के विभिन्न प्रकार के भाव-विभाव का निरूपण करने वाली कथा को धर्मकथा कहा है।[6] आचार्य जिनसेन ने धर्मकथा को सात अंगों में सुशोभित नारी के समान सुंदर और सरस कथा कहा है। इस प्रकार धर्मकथा नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को चित्रित करने वाली होती है। दशवैकालिकवृत्ति में कहा गया है कि चार प्रकार के पुरुषार्थों से युक्त धर्मकथा के चार भेद हैं- आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगनी और निर्वेदिनी।[7] आक्षेपिणी कथा में जीवन के लोकव्यवहार, प्रायश्चित, संशय का निराकरण और सूक्ष्म विषयों का निरूपण किया जाता है। आक्षेपिणी कथा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कथा होती है जो श्रोता के मन के अनुकूल होती है। विक्षेपिणी कथा में दूसरे के मत, विचारधारा, सिद्धान्त आदि में दोष दिखा कर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है। अतः यह कथा मन के प्रतिकूल भी हो सकती है। संवेगनी कथा का उद्देश्य अंत में वैराग्य उत्पन्न करना होता है। अतः यह कथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मनोविकारों के दोष दिखाकर इनके प्रति वैराग्य उत्पन्न कराती है। निर्वेदिनी कथा संसार के प्रति आसक्ति का त्याग

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कराने वाली होती है। इस प्रकार की कथा में लोक-परलोक में प्राप्त होने वाले सुख-दुःख परिणामों का विश्लेषण होता है। अतः निर्वेदिनी कथा को धर्मकथा भी कहा गया है।

मिश्र या संकीर्णकथा - जिस कथा में धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का निरूपण किया गया हो वह मिश्र-कथा कही जाती है।[8] उद्द्योतनसूरी ने ऐसी कथा को संकीर्णकथा कहा है।[9] इस मिश्रकथा में जन्म-जन्मांतरों के कथानक सुंदर ढंग से गुथे हुए रहते हैं। इसमें कथानायकों के प्रेम, पराक्रम, शील, साहस आदि का वर्णन और मनोविकारों का काव्यात्मक विवेचन पाया जाता है। हरिभद्रसूरि ने यह स्पष्ट किया है कि ऐसी मिश्रकथा में जन्म-जन्मांतरों का वर्णन उदाहरण हेतु और कारणों से युक्त होना चाहिए। धर्मतत्व के साथ-साथ अर्थ और काम तत्व का समिश्रण दूध में चीनी के समान संकीर्ण कथा में होता है।[10] इस कथा में वर्णात्मक शैली का अधिक प्रयोग होता है। मनोरंजन और कौतुहल के साथ-साथ यह कथा नैतिक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाली होती है। इस प्रकार विषय के आधार पर जो प्राकृत कथाओं का वर्गीकरण किया गया है वह वास्तव में चार पुरुषार्थों पर आधारित है। आधुनिक दृष्टि से सामाजिक कथा, श्रृंगार कथा, नीतिकथा और लोककथा इन चारों का प्रतिनिधित्व अर्थ, काम, धर्म और मिश्रकथा से हो जाता है।

पात्रानुसार कथाएँ :

प्राकृत कथाकारों ने कथाओं का वर्गीकरण पात्रों के आधार पर भी किया हे। हरिभद्रसूरि ने समराइच्चकहा में और महाकवि कौतुहल ने लीलावईकहा में तीन प्रकार की कथाओं का उल्लेख किया है- दिव्यकथा, मानुषकथा, दिव्यमानुषकथा।[11] जिन ग्रन्थों में दिव्यलोक के व्यक्तियों की जीवन घटनाओं और चमत्कारपूर्ण क्रियाकलापों का निरुपण हो वे दिव्यकथाएँ कहलाती हैं। ऐसी कथाओं में अलौकिक तत्व अधिक होते हैं। आधुनिक कथा आलोचकों ने ऐसी कथाओं को परीकथा (fairy tales) कहा है। इन दिव्य कथाओं का पाइक के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं मन पाता। जिस कथा में मनुष्य-लोक के पात्रों की प्रधानता हो एवं मनुष्य के चरित की अच्छी-बुरी घटनाओं और भावनाओं का निरुपण हो वह कथा मानुषकथा कहलाती है। इस मानुषकथा के पात्र यथार्थ-चित्रण के साथ जुड़े हुए होते हैं। जिस कथा में मनुष्य और देव दोनों प्रकार के पात्रों का वर्णन हो वह कथा दिव्य-मानुषीकथा कहलाती है। इन दिव्यमानुषी कथाओं में देव और मनुष्यों के जीवन की, जन्म-जन्मान्तरों की घटनाएँ चित्रित होती हैं। अतः ये कथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ मार्मिक वर्णनों से भी युक्त होती हैं। इन कथाओं में साहस, सौन्दर्य, प्रेम आदि अनेक चरित्रिक विशेषताओं का अपकर्ष और उत्कर्ष चित्रित होता है। कवि कौतुहल ने अपनी लीलावईकहा को दिव्य-मानुषी कथा कहा है। इसमें चरित्र और घटना दोनों का संतुलन प्राप्त होता है।

भाषागत भेद :

प्राकृत कथाओं का वर्गीकरण भाषा के आधार पर भी किया गया है। महाकवि कौतुहल ने लीलावईकहा में प्रमुख भाषाओं के आधार पर कथाओं के तीन भेद माने हैं- संस्कृतकथा, प्राकृतकथा एवं मिश्रकथा-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णं सक्कय-पायय-संकिण्ण-विहा-सुवण्ण-रइयाओ।
सुव्वंति महा-कइ-पुंगवेहि विविहाउ सुकहाओ।।

-लीला.गा. 36, पृ.10।

भाषागत कथाओं के भेद की चर्चा अन्य आचार्यों ने अधिक नहीं की है क्योंकि भाषाएँ समय-समय पर बदलती रहती हैं। मिश्रकथा का तात्पर्य संस्कृत और प्राकृत भाषा की मिली-जुली कथा से है। अपभ्रंश भाषा में कई कथाएँ लिखी गई हैं। अतः कवि ने जिसे संकीर्ण कथा कहा है वह संस्कृत, प्राकृत के अतिरिक्त अन्य भाषा की कथा का द्योतक है।

शैलीगत भेद :

विषय, पात्र एवं भाषा के आधार पर प्राकृत कथाओं का वर्गीकरण कथाओं के ऊपरी ढ़ांचे को व्यक्त करता है। कथा के आन्तरिक स्वरूप का विश्लेषण इससे नहीं होता। अतः आचार्यों ने स्थापत्य या शैली के आधार पर कथाओं का वर्गीकरण किया है। उद्द्योतनसूरि ने कथा-शिल्प के आधार पर पाँच प्रकार की कथाएँ मानी हैं- सकलकथा, खण्डकथा, उल्लापकथा, परिहासकथा एवं संकीर्णकथा।[12]

सकलकथा - इसमें चारों पुरुषार्थों का वर्णन रहता है। नायक एवं प्रतिनायक के जीवन-संघर्ष की कहानी इसमें वर्णित होती है। अभीष्ट फल या वस्तु की प्राप्ति करना इस कथा का प्रमुख उद्देश्य होता है। सकलकथा का अर्थ सम्पूर्ण कहानी है, जिसे सफल कथा भी कह सकते हैं। **खण्डकथा** - सम्पूर्ण कथावस्तु के किसी एक खण्ड या अंश को पूर्णता के साथ व्यक्त करना खण्डकथा का प्रतिपाद्य होता है। इसकी कथावस्तु छोटी होती है। कथा का मनुष्य प्रतिपाद्य कथा के मध्य में या अन्त के पहले निरूपित कर दिया जाता है। **उल्लापकथा** - समुद्रयात्रा या साहसपूर्ण कार्यों को व्यक्त करने वाली कथा उल्लासकथा होती है। नायक के किसी विशेष गुण को व्यक्त करना इस कथा का उद्देश्य होता है। इसमें धर्मचर्चा एवं नैतिक आदर्श भी होता है।। हास्य अथवा व्यंग्यप्रधान कथा को **परिहासकथा** कहा गया है। **संकीर्णकथा**- इसे कुछ कथाकारों ने मिश्रकथा भी कहा है। वास्तव में इस कथा में सभी कथाओं के गुण विद्यमान होते हैं। उद्द्योतनसूरि ने संकीर्णकथा की प्रशंसा करते हुए कहा है कि सभी कथागुणों से युक्त, अलंकार-काव्य आदि श्रृंगार गुणों से मनोहर, सुन्दर संरचना वाली, सभी कलाओं और आगम के सौभाग्य को प्राप्त संकीर्णकथा का ज्ञान करना चाहिए-

सव्वकहागुणजुत्ता सिंगार-मणोरहा सुरइयंगी।
सव्व-कलागमसुहया संकिण्ण-कहत्ति णायव्वा।।

-कुव. 4.13

कथाओं के इन भेद-प्रभेदों के अतिरिक्त प्राकृत साहित्य में विषय और शैली की दृष्टि से कथाओं के अन्य भेद भी उल्लिखित हैं, किन्तु वे इन प्रमुख भेदों का ही स्पष्टीकरण करते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में कथाओं के निम्न बारह भेद गिनाये हैं-[13]

1. आख्यायिका 2. कथा 3. आख्यान 4. निदर्शन 5. प्रवल्हिका 6. मन्थल्लिका 7. मणिकुल्या 8. परिकथा 9. खण्डकथा 10. सकलकथा 11. उपकथा और 12. बृहत्कथा। इन सबके स्वरूप को उन्होंने स्पष्ट भी किया है। डा. ए.एन. उपाध्ये ने जैन कथाओं का विश्लेषण करते समय प्राकृत

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं का वर्गीकरण इन पाँच भागों में किया है- (i) प्रबन्ध-पद्धति में शलाकापुरुषों के चरित (ii) किसी एक प्रसिद्ध महापुरुष का चरित (iii) रोमाण्टिक धर्मकथाएँ (iv) अर्ध-ऐतिहासिक प्रबन्ध कथाएँ एवं (v) उपदेशप्रद कथाओं के संग्रह कथाकोश।[14]

इस प्रकार प्राकृत कथा साहित्य में जो कथाएँ प्राप्त होती हैं उनके स्वरूप का निर्धारण मुख्यतः उनके प्रतिपाद्य विषय को ध्यान में रखकर किया गया है। किन्तु प्राकृत में सभी प्रकार की कथाएँ उपलब्ध हैं। वसुदेवहिण्डी के कथाकार लेखक ने कामकथा को धर्मकथा का आधार स्वीकार किया है। वे मानते हैं कि पहले कथा के श्रोता या पाठक के रुचि की कथा कहकर फिर कथाकार अपनी बात कह सकता है। वास्तव में प्राकृत कथा साहित्य की एक-एक कथा का सूक्ष्म अध्ययन होना आवश्यक है, तभी कथा के समस्त भेद-प्रभेद सामने आ सकेंगे। इसके लिए समस्त प्राकृत कथाओं का कोश तैयार करने की प्राथमिक आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. अकहा कहा य विकहा हविज्ज पुरिसंतर पप्प। - दाश.हा.गाथा 208।।
2. पद्मपुराण, पर्व 2, श्लोक 40; महापुराण, पर्व 1, श्लोक 120
3. एत्थ सामन्नओ चत्तारि कहाओ हवन्ति। तं जहा- अत्थकहा, कामकहा, धम्मकहा, संकिण्णकहा य।- समरा., पृष्ठ 2
4. विज्जासिप्पमुवाओ, अणिवेओ संचओ म दक्खत्तं। सामं दंडो भेओ उवप्पयाणं च अत्थकहा।। - दश.वृ., गाथा 189
5. समराइच्चकहा, सम्पा.- याकोबी, पृ.3
6. सा उण धम्मकहा णाणाविह-जीव परिणाम-भाव विभावणत्थं। - कुव. 4.9
7. धम्मकहा बोद्धव्वा चउव्विहा धीरपुरिस पन्नता। अक्खेवणि विक्खेवणि संवेगो चेव निव्वेए।। - कुव. पृ.4, अनु.9
8. धम्मो अत्थो कामो उवइस्सइ जन्तसुत्त कव्वेसु। लोगे वेए समये सा उ कहा मीसिया णाम।। - दश.गा.266
9. पुणो सव्वलभवणा संपाइय-तिवग्गा संकिण्णा त्ति।- कुव. पृ.4
10. शास्त्री, नेमिचन्द: हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परीशीलन, 1965, पृ.114
11. तं जह दिव्वा तह दिव्व-माणुसी माणुसी तहच्चेय। -लीला.गा.35
12. कुवलयमालाकहा, पृ.4 अनुच्छेद 7
13. काव्यानुशासन, अध्याय 8, सूत्र 7-8, पृ.462-465।
14. बृहत्कथाकोश (हरिषेण) की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ.35

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचम

आचारांग व्याख्याओं की कथाएं

आचारांगसूत्र अर्धमागधी साहित्य का आधारभूत ग्रन्थ है। इसमें जीवन के मूलभूत सत्यों का उद्घाटन एक आत्मानुभवी साधक द्वारा किया गया है। अतः यह अध्यात्मविद्या का, आत्मा-जिज्ञासा का आदि ग्रन्थ कहा जा सकता है, जिसका धरातल पूर्ण अहिंसक है। समता और संयम द्वारा अहिंसक विश्व का निर्माण करना, उसकी प्रेरणा देना इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। इसी परिवेश में दर्शन के विभिन्न प्रश्न यहाँ समाधित हुए हैं। उनके स्पष्टीकरण के लिए आचारांग पर निर्युक्ति, चूर्णि, टीका, वृत्ति आदि कई व्याख्यात्मक ग्रन्थ भी जैन दार्शनिक आचार्यों ने लिखे हैं। इस व्याख्यात्मक साहित्य में कई मनोहर दृष्टान्तों और कथाओं द्वारा आचारांग के विषय को सँरल और सुबोध बनाया गया है। उन कथाओं को संकलित कर उनके प्रतिपाद्य और वैशिष्ट्य को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

द्वितीय भद्रबाहु ने सं. 562 (505 ई.) के लगभग आगमों पर निर्युक्तियां लिखी हैं। अतः उनके द्वारा लिखित आचारांग निर्युक्ति का समय 5-6 वीं शताब्दी माना जा सकता है। आचारांग निर्युक्ति में कुल 386 प्राकृत गाथाएं हैं। आंचारांग के दोनों श्रुतस्कन्धों पर इनसे प्रकाश पड़ता है। विषय को समझाने के लिए इस निर्युक्ति में कुछ दृष्टान्त, उदाहरण एवं कथाएं भी संक्षेप में प्रस्तुत की गयी हैं। थोड़े शब्दों में सार की बात कहना इस निर्युक्ति की विशेषता है। लोकसार नामक अध्ययन का विषय प्रतिपादन करते समय कहा गया है कि सम्पूर्ण लोक का सार धर्म है। धर्म का सार ज्ञान है। ज्ञान का सार संयम है और संयम का सार निर्वाण है-

लोगस्स सार धम्मो धम्मंपि य नाणसारियं बिंति।
नाणं संजमसारं संजमसारं च निव्वाणं।

- आ. नि. गा. 245

आचारांगसूत्र के विभिन्न संस्करणों से भी निर्युक्ति का महत्व स्पष्ट होता है।

आचारांग के विषय को चूर्णि से और अधिक स्पष्ट किया गया है। चूर्णिकारों में जिनदासगणि महत्तर का नाम प्रसिद्ध है। इनका समय आचार्य हरिभद्र के पूर्व लगभग 650-750 ई. के बीच माना जाता है। आनन्दसागरसूरि के मतानुसार आचारांग चूर्णि के कर्ता जिनदासगणि महत्तर हैं। यद्यपि परम्परा से जिनदासगणि की चूर्णियों में आचारांग का उल्लेख नहीं है।[2] आचारांगचूर्णि प्राकृत प्रधान है। इसमें प्रसंगानुसार संस्कृत के श्लोक भी उद्धृत किये गए हैं। किन्तु सन्दर्भ किसी उद्धरण का नहीं दिया गया है। विषय के प्रतिपादन में कुछ कथाएं संक्षेप में प्रस्तुत की गयी हैं। इसका प्रकाशन रतलाम से हुआ है। आचारांग पर लिखी गयी निर्युक्ति के विषय को 9-10 वीं शताब्दी के विद्वान् शीलाचार्य ने अपनी आचारांगशीलांकटीका में और अधिक स्पष्ट किया है। शीलाचार्य तत्वादित्य व शीलांक के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनकी वर्तमान में आचारांग और सूत्रकृतांग पर दो टीकाएं ही उपलब्ध हैं, जबकि इन्हें नौ अंगों पर टीका लिखने वाला कहा गया है।[3] आचारांग की टीका आचारांग वृत्ति या विवरण के नाम से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भी जानी जाती है। इस टीका को उद्धरण गाथाओं, पद्यों एवं कथानकों द्वारा सुबाध बनाया गया है। यह टीका कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

वि.सं. 1629 के लगभग अजितदेवसूरि ने शीलांक की आचारांगटीका के आधार पर आचारांगदीपिका लिखी है। इसको सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है।[4] शीलांकटीका के लिए यह कुंजी है। इसके पूर्व वि. सं. 1528 में जिनहंस ने आचारांगटीका लिखी है। इसका आधार शीलांकटीका ही है। इसी का अनुकरण पार्श्वचन्द्र की आचारांगटीका में है।[5]

आचारांग के व्याख्या साहित्य में विभिन्न प्रसंगों में विषय को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए जैन संघ की परम्परा में प्रचलित कथाओं के उदाहरण दिये गये हैं। आचारांग मूल में कुछ रुपकों के मात्र नाम निर्दिष्ट हैं। निर्युक्तिकार ने उन कथाओं को विस्तार दिया है। किन्तु कथाओं को स्पष्ट स्वरूप चूर्णिकार ने प्रदान किया है। उन्होंने कई लोककथाओं को भी इसमें सम्मिलित किया है। टीकाकार शीलांक ने चूर्णि में वर्णित कथा को टीका में उद्धृत नहीं किया, केवल उसका संकेत कर दिया है। किन्तु कथाओं को संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत किया है। आचारांग के व्याख्या साहित्य की अधिकांश कथाएं आवश्यकचूर्णि में उपलब्ध हैं। अतः आवश्यकचूर्णि और आचारांग- चूर्णि का तुलनात्मक अध्ययन बहुत उपयोगी हो सकता है। आचारांग की कथाओं के विश्लेषण के पूर्व उन समस्त कथाओं को आचारांग के विषयक्रम के अनुसार यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

जाति-स्मरण के तीन दृष्टान्त :

1. (क) स्व-मति से जाति-स्मरण :- वसन्तपुर नगर में जितशत्रु राजा है, उसकी रानी धारिनी है। उनके धर्मरुचि नामक पुत्र है। वह राजा जितशत्रु मुनि बनने की इच्छा से धर्मरुचि को राज्य पर बैठाकर जाने लगा। तब पुत्र ने मां से पूछा कि पिताजी किसलिए राज्य लक्ष्मी को त्याग रहे हैं। तब उसे पिता द्वारा कहा गया कि इस चंचल और दुःखभूत लक्ष्मी से क्या लाभ ? इसे छोड़कर मैं धर्म करना चाहता हूँ।

तब पुत्र ने कहा- 'यदि ऐसा है, तब हे पिता ! आप मुझे क्यों इस पाप में डालते हैं। मैं भी धर्म अंगीकार करूँगा।' तब वे दोनों पिता-पुत्र एक तपस्वी के आश्रम में चले गये। वहाँ पर सभी धार्मिक क्रियाएं करने लगे।

वहाँ पर अमावस्या के एक दिन पूर्व किसी तापस ने सूचना दी कि कल "अनाकुट्टि" होगी। अतः आज ही पुष्प, फल, कुश आदि सब ले आओ। धर्मरुचि के पिता ने समझाया कि अमावस्या आदि पर्व के दिनों में लता, पुष्प आदि को जीव हिंसा होने से काटते नहीं हैं, यही "अनाकुट्टि" है। धर्मरुचि ने सोचा- ऐसी अनाकुट्टि" हमेशा हो तो अच्छा है।

दूसरे दिन अमावस्या को रास्ते में उसे कुछ साधु जाते हुए दिखे। धर्मरुचि ने उनसे पूछा- क्या आज आप लोगों की 'अनाकुट्टि' नहीं है। उन्होंने कहा कि हमारी तो जीवनपर्यन्त के लिए 'अनाकुट्टी' है। उनके इस कथन से धर्मरुचि को अपनी गति से ही जाति-स्मरण हो गया कि वह पहले मुनि था। फिर स्वर्ग जाकर यहाँ जन्मा है। प्रत्येकबुद्ध हुआ।[6] इसी प्रकार वल्कलचीरि, श्रेयांस आदि के सम्बन्ध में जानना चाहिए। यह कथा जैन साहित्य में प्रसिद्ध है।[7]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. (ख) पर-व्याकरण द्वारा जाति-स्मरण :- गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर को पूछा- हे भगवन् ! मुझे केवलज्ञान क्यों नहीं हो पा रहा है ? तब भगवान् ने कहा-हे गौतम ! तुम्हारा मेरे ऊपर बहुत स्नेह है, उस राग के कारण से तुम्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा है। तब गौतम ने पूछा कि आपके ऊपर मेरा राग क्यों है ? तो भगवान् ने उसे पूर्व-जन्मों के सम्बन्ध बतलाए। उन्हें सुनकर गौतम को जाति-स्मरण हुआ।[8] यह तीर्थकृत् व्याकरण जाति-स्मरण है।

3. (ग) अन्य श्रवण द्वारा जाति-स्मरण :- मल्लि स्वामी ने मल्लि राजकुमारी के रूप में अपने पर आसक्त छह राजकुमारों को प्रतिबोधित करते हुए उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण दिलाया था कि हम सभी एक साथ दीक्षित हुए थे। उसके बाद जयन्त विमान में देव हुए, इत्यादि। इससे उन राजकुमारों को जाति-स्मरण उत्पन्न हुआ।[9]

4. यशोधर द्वारा आटे के मुर्गे की बलि :- मरने के बाद पितृ-पिण्डदान आदि प्रवृत्त होते हैं। मेरे इस सम्बन्धी को इसने मारा अतः इसके पाप को दूर करने के लिए उसके बन्धु-बान्धव दुर्गा आदि देवी के समक्ष बकरे आदि की बलि देते हैं। जैसे यशोधर ने आटे की मुर्गे की बलि दी थी।[10] यशोधर की कथा की जैन साहित्य में लम्बी परम्परा है। इस कथा पर कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।

5. जात्यंध मृगापुत्र की वेदना :- जो न देखते हैं, न सुनते हैं, न सूंघते हैं, न चलते हैं, वे वेदना का अनुभव कैसे करते हैं ? ऐसा पूछे जाने पर भगवान् महावीर ने उदाहरण देकर कहा- जैसे कोई जात्यंध, बहिरा, गूंगा, कुष्ठी, लंगड़ा व्यक्ति भाले की नोंक से छेदे जाने पर दुःख का अनुभव करता है- मृगापुत्र की तरह, इसी प्रकार पृथ्वीकाय जीव भी दुःख का अनुभव करतें हैं। इसलिए पुथ्वी को हल, कुदाली आदि से खोदने पर वह हिंसा का कारण होता है।[11] आगम साहित्य में यह कथा प्रचलित रही है।

6. धर्मघोष के प्रमादी शिष्य की कथा :- आतंकदर्शी वायुकाय की हिंसा नहीं करता। यह आतंक द्रव्य और भाव दो प्रकार का है। द्रव्य आतंक के कथन में प्रमादी शिष्य का यह उदाहरण है-

जम्बूद्वीप में सुप्रसिद्ध भारतवर्ष है। वहाँ पर अनेक नगर के गुणों से युक्त राजगृह नामक नगर है। वहाँ पर शत्रुओं के भारी अभिमान का मर्दन करने वाला, भुजाओं में बल रखनेवाला, जीव-अजीव के स्वरूप को जानने वाला जितशत्रु नामक राजा था। निरन्तर वैराग्य भाव को धारण करने वाला वह राजा एक बार धर्मघोष मुनि के चरणों में एक प्रमादी शिष्य को देखता है। वह शिष्य अनेक वर्जित कार्यों को कर रहा था। अतः शेष शिष्यों के आचरण की रक्षा के लिए जितशत्रु उस प्रमादी शिष्य को अपने साथ ले आया।

अपने सैनिकों को राजा ने उस प्रमादी शिष्य को सौंप दिया। उन्होंने उसके सामने ही वहाँ बनावटी तीव्र तेज जलने वाले पदार्थों के ढेर में एक नकली मनुष्य को डाल दिया। वह क्षणमात्र में ही जलकर वहाँ राख हो गया। फिर राजा ने पहले से सिखाये हुए दो व्यक्तियों को वहाँ बुलाया। एक गृहस्थवेश में था और दूसरा साधु के वेश में। राजा ने उनका अपराध पूछा । सैनिकों ने कहा कि इन्होंने आपकी आज्ञा की अवहेलना की है और यह संन्यासी अपने धर्म के अनुसार आचरण नहीं करता है। तब राजा ने उन दोनों को उस नकली तेजाब के ढेर में डलवा दिया। क्षणमात्र में वे दोनों हड्डियों के ढेर हो गये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजा उस प्रमादी शिष्य के सामने आचार्य को पूछता है- 'क्या' तुम्हारे संघ में कोई प्रमादी शिष्य है ? मुझे कहो, मैं उसे ठीक कर दूँगा । आचार्य ने कहा- 'अभी कोई शिष्य प्रमादी नहीं है। जब होगा तो तुम्हें कहूँगा।' राजा के चले जाने पर उस प्रमादी शिष्य ने आचार्य को कहा- 'आप राजा को मत कहना। मैं आज से प्रमाद छोड़ दूँगा और आपकी आज्ञा में चलूँगा। यदि कभी प्रमाद करूँ तो आप मुझे उस राजा को दे देना। अब मैं आपकी शरण में हूँ।' तब से वह प्रमादी शिष्य सजा के आतंक के भय से आचरणशील और सीधा हो गया।[12] बाद में राजा ने भी अविज्ञा के लिए उससे क्षमा मांगी। इस प्रकार द्रव्य आतंकदर्शी अहित, प्रमाद, हिंसा आदि कार्यों से अपने को सर्वथा अलग कर लेता है, जैसे उस धर्मघोष को प्रमादी शिष्य ने किया।[13]

भव आतंकदर्शी तो नरक आदि जन्मों में प्रिय के वियोग आदि मानसिक एवं शारीरिक दुःखों के अनुभव से हिंसा आदि कार्यो से विरत हो जाता है। वस्तुतः आतंक, अहित और आत्मदर्शन द्वारा हिंया से विरत हुआ जा सकता है। आचारांग के टीकाकार ने ठीक ही कहा है-

कट्ठेण कंटएण व पाए विद्धस्स वेयणट्टस्स।
जइ होइ अनिव्वाणी सव्वत्थ जिएसु तं जाण।

-शी. पृ. 151

राग-द्वेषवश की गयी हिंसा सम्बधी कथाएं :

प्रमाद रागद्वेषात्मक होता है। यह मेरी माता है। इसने मुझपर उपकार किया है। अतः इसे भूख प्यास आदि की पीड़ा न हो इसलिए व्यक्ति कृषि, वाणिज्य, नौकरी आदि तथा हिंसात्मक साधनों से भी धन कमाता है। माता आदि को कष्ट पहुँचाने वाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। द्वेष भाव से हिंसात्मक क्रियाएँ की जाती हैं।[14] यथा-

7. (क) **परशुराम कथा** :- परशुराम ने अपनी मां रेणुका, उसके साथ अर्वध सम्बन्ध करने वाले राजा अनंतवीर्य एवं अपने सौतेले भाई को मार डाला था। इसके प्रतिशोध में अनंतवीर्य के पुत्र कृत्यवीर्य ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार डाला। तब परशुराम ने कृत्यवीर्य को मार डाला और उन्हें मार कर पृथ्वी को क्षत्रियों से सात बार खाली कर दिया।[15] बाद में कृत्यवीर्य के पुत्र सुभूम ने परशुराम को मार दिया और 21 बार पृथ्वी को ब्राह्मणों से खाली कर दिया।[16] यह कथा प्रचीन जैन साहित्य में प्रचलित रही है। इसे प्रचलित रामकथा का जैन रूपान्तरण भी कहा जा सकता है।

8. (ख) **चाणक्य द्वारा नन्दकुल का नाश** :- संसारी प्राणी अपनी बहिन के प्रति राग होने से अथवा पत्नी के प्रति आसक्ति से भी दुःख का अनुभव करता है। जैसे चाणक्य अपनी बहिन और बहिनोई की अवज्ञा से और अपनी पत्नी की प्रेरणा से नन्द राजा के पास धन पाने की आशा से वहां गया। किन्तु वहां अपमानित होने पर उसने क्रोध से चन्द्रगुप्त की सहायता से नन्दकुल का ही नाश कर दिया।[17] जैन साहित्य में चाणक्य का प्रसंग अंकित किया गया है।

9. (ग) **जरासन्ध द्वारा बदला** :- जरासन्ध राजगृह का राजा था और कंस का श्वसुर था। कंस को नवां प्रतिशत्रु कहा गया है, जिसकी मृत्यु कृष्ण के द्वारा हुई थी। जरासन्ध ने अपने दामाद कंस की हत्या इसलिये करवा दी थी कि वह उसकी पुत्री को दारुण दुख न दे।[18]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

10. **प्रद्योत एवं मृगावती प्रसंग** :- किस काल में क्या कर्त्तव्य करना चाहिये, क्या नहीं, इसका विवेक न होने पर अनर्थ होता है। व्यक्ति को दुःख उठाना पड़ता है। जैसेः- उज्जैनी के राजा प्रद्योत की कथा जैन साहित्य में अति प्रसिद्ध है। आचारांग चूर्णि में प्रद्योत द्वारा धुंधुमार राजा पर आक्रमण करने का और उसके द्वारा कैदी बनाये जाने का वर्णन है।[19] आचारांगटीका में प्रद्योत एवं मृगावती के प्रसंग का उल्लेख है।[20]

11. **धन सार्थवाह की वृद्धावस्था** :- वृद्धावस्था में स्वयं के द्वारा पोषित सन्तान, बहुएं एवं पत्नी भी व्यक्ति की सेवा नहीं करते हैं। वृद्धावस्था स्वयं दुःखों की खान है।[21] इसको एक कथानक द्वारा स्पष्ट किया गया है-

कौसाम्बी नगरी में अनेक पुत्रों वाला धनवान धनसार्थवाह रहता था। उसने अपनी योग्यता ये पर्याप्त धन कमाया था। उससे उसके पुत्र, पुत्रवधू, पत्नी, मित्र आदि सभी सुखी थे। वृद्धावस्था आने पर धनसार्थवाह ने गृहस्थी का भार अपने पुत्रों को सौप दिया। कुछ दिन तक तो बहुओं ने अपने श्वसुर की सेवा की। किन्तु बाद में वे उसमें शिथिलता करने लगीं। धन ने इसकी शिकायत अपने पुत्रों से की तो बहुओं ने बिल्कुल ही धन की सेवा बन्द कर दी। उसकी पत्नी ने भी उपेक्षाभाव दिखाया। तब वह धन सोचता है कि वृद्धावस्था दुःखों का भण्डार है। आचारांगचूर्णि में धनसार्थवाह एवं उसकी पत्नी भद्रा की एक अन्य कथा भी है।[22]

12. **विषयों में आसक्त ब्रह्मदत्त** :- ब्रह्मदत्त 22 वें चक्रवर्ती के रूप में प्रसिद्ध है। पार्श्वनाथ के पूर्व ब्रह्मदत्त काम्पिल्लपुर में राज्य करता था। उसकी रानियों में कुसमति आदि प्रमुख थीं। ब्रह्मदत्त कामभोगों को दुष्परिणामों को न जानते हुए उनमें डूबा रहता था। उसके पूर्व-जन्म के भाई मुनि चित्त के समझाने पर भी वह विषयों के भोग से विरत नहीं हुआ। अतः उसे सातवें नरक में जाकर दुःख भोगने पड़े।[23]

13. **विषयों से विरक्त सनत्कुमार** :- सनत्कुमार जैसे आत्मज्ञानी विषयों के दुष्परिणमों को जानते हैं। अतः वे विषय-भोगों में लिप्त नहीं होते। सनत्कुमार चतुर्थ चक्रवर्ती के रूप में प्रसिद्ध है। सनत्कुमार का वर्णन सबसे सुन्दर एवं आकर्षक युवक के रूप में हुआ है। किन्तु जब उसे अपने रूप का घमण्ड हो गया तभी वह कुरूप एवं बीभत्स बन गया था। किन्तु तब उसने तपस्या करके देव पद प्राप्त किया।[24]

"अपडिण्ण" की व्याख्या में कथानक :

आचारांग के लोकविभाग अध्ययन के 5वें उद्देश्य में "अपडिण्ण" (सूत्र) की व्याख्या करते समय कहा गया है कि जिसकी कोई प्रतिज्ञा (निदान) न हो वह अप्रतिज्ञ (अपडिण्ण) है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों के उदय से जो व्यक्ति निदान करता है वह प्रतिज्ञा कहलाती है, जो दुःखदायी है।[25] इसके कुछ उदाहरण हैः-

14. (क) **स्कन्दचार्य (क्रोध में)** :- मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में स्कन्दाचार्य ने दीक्षा ली थी। एक बार उसके पूर्व जन्म के बैरी पालक ने स्कन्द और उसके शिष्यों को तेल पेरने के यन्त्र से पीड़ित कर दिया था। अतः स्कन्द ने क्रोध में आकर यह निदान किया था कि मैं इस पालक पुरोहित सहित पूरे नगर का विनाश कर दूँगा। अपनी तपस्या के कारण वह मरकर देव हुआ। अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कर उसने पालक पुरोहित के आवास के समीप 12 योजन में आग

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लगवा दी। थी वह प्रदेश आज दण्डकारण्य के नाम से जाना जाता है।[26] जैन साहित्य में यह प्रसंग बहुप्रचलित माना जाता है।

15. (ख) बाहुबली (मान में) :- ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली और भरत का युद्ध जैन साहित्य में अहिंसक युद्ध के रूप में चित्रित है। बाहुबली को जब संसार से वैराग्य हो गया तो उन्होंने दीक्षा ले ली। कठोर तपस्या के उपरान्त भी उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था। क्योंकि उनके मन में मान था कि मैं कैसे अपने भाइयों के केवलज्ञानी पुत्रों के सामने छद्मस्थ होकर उन्हें देखूंगा।[27] तब ब्राह्मी और सुन्दरी के समझाने पर बाहुबली का मान समाप्त हो गया था और उन्हें केवलज्ञान हुआ।[28]

16. (ग) मल्लिस्वामी का जीव (माया में) :- ज्ञाताधर्मकथा में मल्लिकुमारी की कथा वर्णित है। मल्लिस्वामी को स्त्री तीर्थंकर इसलिए बनना पड़ा क्योंकि वह पूर्व-जन्म में महाबल अनगार के रूप में अपने साथी अनगारों से माया (कपट) करके उनसे छिपाकर अधिक तपस्या, उपवास आदि करता था।[29]

आचारांग में मल्लि स्वामी के जीव की इसी घटना का उदाहरण देकर कहा गया है कि साधु को निदान नहीं करना चाहिए। अप्रतिज्ञ रहना चाहिए[30]

17. (घ) यति आभासा :- लोभ के उदय से परमार्थ को न जानने वाले 'साम्प्रतेक्षिणो यति आभासा मासक्षपणादि की भी प्रतिज्ञा (निदान) करते हैं। यह कथा पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुई। जैन साहित्य में इसके अन्य सन्दर्भ ज्ञात नहीं हैं।

18. अप्रतिज्ञ (निदानरहित) वसुदेवः- संयम, अनुष्ठान आदि को करते हुए वसुदेव निदान नहीं करता है। गोचरी आदि में आहार आदि को अपना नहीं मानता है अतः वह अप्रतिज्ञ है।

19. दधिघतिकाद्रमक दृष्टान्तः- द्रमक नामक ग्वाले ने किसी भैंस की देखरेख के बदले दूध प्राप्त किया। उसका दही बनाकर वह सोचने लगा कि इसका घी बनाकर उससे धनप्राप्ति, फिर पत्नी, फिर बच्चे, उसके बाद उनकी लड़ाई होगी। फिर मैं उनको पैर से प्रहार करूँगा। इससे वह दही की मटकी ही फूट गयी। द्रमक ने न तो वह दही स्वयं खाया, न किसी पुण्यवान को दिया[31] इसी प्रकार कासंकसः (किंकर्तव्यविमूढ) की गति होती है।[32] इस द्रष्टान्त का शेखचिल्ली का सपना के रूप में पर्याप्त विकास हुआ है।

20. मम्मणवणिक (लोभ) :- किंकर्तव्यविमूढ व्यक्ति दुःख ही पाता है। कहा भी है-

सोउंसोवणकाले मज्जणकाले य मज्जिउं लोलो।
जीमेउं च वराओ जेमणमाले न चाएइ।

यहां मम्मणवणिक का दृष्टान्त देखना चाहिए।[33] वह लोभी मम्मण माया के वशीभूत होकर ऐसा कार्य करता है, जिससे उसके वैरी बढ़ते हैं।

21. मगधसेना गणिका (कामासक्त):- महा भोगों में जिसकी महती श्रद्धा है वह महाश्रद्धी है। जैसे- धनसार्थवाह और मगधसेना गणिका। राजगृह की यह गणिका धनसार्थवाह के अपार धन और रूप से आकृष्ट होकर उसके पास अभिसार के लिए गयी। किन्तु उसने अपने व्यापार के कारण गणिका की ओर देखा भी नहीं, इससे गणिका उदास हो गयी थी। एक दिन राजा जरासन्ध ने मगधसेना की उदासी का कारण पूछा। तो उसने कहा मैं इस अमर व्यपारी के कारण क्षुब्ध हूँ, जिसे अपनी मृत्यु नहीं दिखती। अपने को अमर समझ कर वह परिग्रह जोड़ने में लगा है।[34]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मकथानकों का महत्त्व :

धर्मकथानकों द्वारा उपदेश देना चाहिये। किन्तु धर्मकथा से किसी का अनादर न हो। अन्यथा जैसे-

22. नन्द बल से चाणक्य उपासक को

23. बुद्ध की उत्पत्ति के कथानक से अथवा

24. भल्लिग्रह उपाख्यान से भागवत को

25. एवं पेठाल पुत्र सत्यकि और उमा की कथा से रौद्र (शिवभक्त) को प्रद्वेष उत्पन्न हो सकता है। अतः मुमुक्षुओं के हित के लिए ही धर्म कथा को कहने में पुण्य है।[35]

पेढालपुत्र सत्यकि की कथा जैन साहित्य में महेश्वर (महिस्सर) के कथानक के रूप में प्रसिद्ध है।[36] यह भगवान् शिव की कथा का जैन रूपान्तरण है।[37]

इंद्रियविषयों को जीतो :

शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श के वशीभूत होकर प्राणी दुख पाते हैं।[38] यथा-

26. (क) पुष्पशाल एवं भद्रा (शब्द में) :- वसन्तपुर में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पुष्पशाल रहता था। उसी नगर के सेठ की पत्नी भद्रा पुष्पशाल के संगीत के शब्द में इतनी आसक्त हुई कि वह अपने आपको भूल गयी और वह उपरी छत से गिर कर मर गयी।[39] आचार्य हरिभद्र ने अपनी आवश्यकवृत्ति में भी इस कथा का उल्लेख किया है। आख्यानमणिकोश में पुष्पचूल और भद्रा के नाम से यह कथा संकलित है।

27. (ख) अर्जुन तस्कर (रूप में) :- अर्जुन नामक चोर को सुन्दर रूप के प्रति आकर्षण के कारण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।[40] अपवश्यकटीका एवं आख्यानमणिकोश में रूप के प्रति आकर्षण की कथाएं वर्णित हैं। किन्तु उनके कथनक आचारांग से निम्न हैं।

28. (ग) गन्धप्रिय कुमार (गन्ध में) :- गन्धप्रिय नाम का एक राजकुमार था उसे सुगन्ध बहुत प्रिय थी। एक बार जहरीले पुष्प को सूंघने से उनकी मृत्यु हो गयी।[41] आख्यानमणिकोश में यह कथा नृपसुत गंधप्रिय के नाम से वर्णित है।

29. (घ) सौदास (रस में) :- सौदास नामक एक राजा था। उसे मांस बहुत प्रिय था। वह मनुष्य का मांस भी नहीं छोड़ता था।[42] आख्यानमणिकोश में "नराद" के नाम से कथा वर्णित है। लोगों ने ऐसे मांसभक्षी राजा को गद्दी से उतार कर जंगल में भेज दिया था। वहाँ एक मुनि ने उसे प्रतिबोधित किया।

30. (ङ.) सत्यकि (स्पर्श में) :- सत्यकि का मूल नाम महिस्सर था। उसने महारोहिणी विद्या प्राप्त की थी, जो उसके माथे पर छेद करके उसमें प्रविष्ट हुई थी। इसी को उसका तीसरा नेत्र कहा गया। वह स्त्रियों का लोलुप था। अतः राजा प्रद्योत ने उसे उमा गणिका की सहायता से मार डाला था।[43]

31. (च) सुकुमारिका की कामासक्ति :- आचारांगटीका में इस कथा का संकेत मात्र है।[44] ज्ञाताधर्म की सुकुमारिका की कथा से यह भिन्न है। आवश्यकचूर्णि में सुकुमारिका को जितशत्रु की पत्नी कहा गया है। यह वही कथा होनी चाहिये। आख्यानमणिकोश में यही कथा सुकुमारिका के नाम से वर्णित है। कामासक्त जितशत्रु राजा-रानी को लोग जंगल में छोड़ देते

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। वहां रानी एक लंगड़े के प्रेम में पड़ कर राजा को नदी में बहा देती है। अन्त में वह सुकुमारिका सब के द्वारा लज्जित की जाती है।

32. गुणसेन-अग्निशर्मा :- अज्ञानी के संसर्ग से बैर बढ़ता है। किसी की हंसी नहीं उड़ानी चाहिये। यथा-गुणसेन द्वारा अग्निशर्मा की हंसी उड़ायी गयी थी तब उसने गुणसेन के साथ नौ भवों का वैर बांधा था[45] हरिभद्र की समराइच्चकहा में इस कथा का विस्तार हुआ है।

33. कपिल का लोभ :- जो मनुष्य अनेक चित्तवाला होता है वह स्वयं दुखी होता है एवं दूसरों को दुख देता है। जैसे दरिद्र कपिल के द्वारा धन मांगने के प्रसंगों में अपने चित्त को कई बार बदला गया। उसका लोभ इतना बढ़ा कि वह पूरे जनपद को दुःख देने वाला बन गया।

34. उदयसेन राजा के पुत्र :- भाव सम्यक्त्व के प्रतिपादन के प्रसंग में आचारांग निर्युक्ति गा. 219 की टीका में शीलांक द्वारा उदयसेन के दो पुत्रों की कथा प्रस्तुत की गयी है।[46]

उदयसेन राजा था। उसके दो पुत्र थे- वीरसेन एवं सूरसेन। उनमें वीरसेन अन्धा था। उसने गान्धर्व एवं वाद्य कला में निपुणता प्राप्त की। दूसरा राजकुमार सूर- सेन धनुर्वेद में निपुण हो गया। उसकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। तब वीरसेन ने भी राजा से कहा कि मैं भी धनुर्विद्या सीखूंगा। राजा की आज्ञा से कुशल गुरू से सीखकर वह शब्दभेदी धनुर्विद्या में निपुण हो गया। एक बार वह शत्रु की सेना को पराजित करने युद्ध में भी गया। किन्तु वहां शत्रु को जब ज्ञात हो गया कि वीरसेन अन्धा है तो उन्होंने बिना कोई शब्द किये उस पर आक्रमण कर उसे पकड़ लिया। तब सूरसेन ने अपने पराक्रम से जाकर उसे शत्रु से छुड़ाया। अतः अभ्यस्त विज्ञानक्रिया होने पर भी आंख के न होने पर भी इच्छित कार्य की सिद्धि वीरसेन को नहीं हुई, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के अभाव में क्रियाकाण्डी मिथ्यादृष्टि की मुक्ति नहीं है।[47] इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

35. रोहगुप्त मन्त्री द्वारा धर्म-परीक्षा :- सभी प्राणियों को दुःख प्रिय नहीं है। अतः उन्हें नहीं मारना चाहिये। उन्हें मारने में दोष है। जो यह कहते हैं कि प्राणी-हत्या में दोष नहीं है, उनके वचन अनार्य हैं। इस बात को रोहगुप्त मन्त्री ने धर्म-परीक्षण द्वारा प्रमाणित किया है। यथा:-

चम्पा नगरी में सिंहसेन राजा था। उसके मन्त्री का नाम रोहगुप्त था। वह आर्हत् धर्म को मानने वला था। एक बार राजा ने सच्चे धर्म को जानने की इच्छा व्यक्त की। तब रोहगुप्त ने धर्मिकों की परीक्षा के लिए एक समस्या दी (सकुण्डलं वा वयणं न व)। इसकी पूर्ति कई लोगों की। किन्तु अन्त में आर्हत् धर्म के क्षुल्लक ने इसका समाधान किया।:-

खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स, अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स।
किं मज्झ एएण विचिंतिएणं, सुकुंडलं वा वयणं न वत्ति

-शी.पृ. 414

राजा ने जब उन क्षुल्लक से धर्म का स्वरूप पूछा तो वह सूखे और गीले कीचड़ के दो गोले दीवाल पर फेंक कर चल दया। राजा के पूछने पर उसने समझाया कि जैसे इनमें से जो गीला गोला है वही दीवाल पर चिपका है। उसी प्रकार जो व्यक्ति कामनाओं की लालसा से युक्त हैं, वे ही कर्म बांधते हैं। विरक्त व्यक्ति सूखे गोले की तरह कर्मों से नहीं चिपकते।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधु के उत्थान-पतन का क्रम :

36. **नंदिषेण** :- नंदिषेण एक साधु था। किन्तु कामभोगों के आकर्षण से उसने साधु धर्म छोड़ दिया और वह एक वेश्या के साथ रहने लगा था। आवश्यक चूर्णि में पार्श्वनाथ के अनुयायी नंदिषण स्थविर का उल्लेख है, जो उक्त नंदिषेण से भिनन होना चाहिए।

37. **उदायिनृप** :- आवश्यकचूर्णि में कूणिक के पुत्र उदायी का उल्लेख है, जिसने पाटलिपुत्र बसाया था। उदायी नृप ने दीक्षा छोड़कर फिर उसे ग्रहण किया तो वह गृहस्थ के तुल्य ही है।

कामभोगों से कलह और आसक्ति :

स्त्रियों में कामभेग की भावना पहले दुखदायी और बाद में स्पर्शसुखवाली होती है।[49] जैसे

38. **(क) वणिक् इन्द्रदत्त** :- इन्द्रदत्त राकुमारी के ऊपर तांबोल फेंक कर चला गया। यह देख कर सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। राजा ने इन्द्रदत्त को मारने का आदेश दिया। किन्तु राजकुमारी ने उसे बचा लिया और दोनों का विवाह हो गया।

39. **(ख) ललितागक** :- आचार्य हरिभद्र की समराइच्चकहा में ललितांग को कामशास्त्र का ज्ञाता और समरादित्य का मित्र बताया है। कुमारपालप्रतिबोध में भी ललितांग का नाम कामी व्यक्ति के रूप में हुआ है, जिसे शीलवती द्वारा दण्ड दिया गया था।

40. **जिनशत्रु राजा के दो पुत्र** :- जैसे पक्षी अपने बच्चों को जन्म से लेकर उनके पंख निकलने तक पालता है, वैसे ही आचार्य अपने शिष्य को भी उसकी प्रवज्या से लेकर उसकी मुक्ति-यात्रा तक उसे सन्मार्ग दिखाता है। किन्तु यदि कोई शिष्य आचार्य का उपदेश न मानकर कुमार्ग पर चलता है तो वह उज्जयिनी के राजा जितशत्रु के पुत्र की तरह होता है। यथा-

उज्जयिनी के राजा जितशत्रु के दो पुत्र थे। उनमें से बड़ा पुत्र धर्मघोष आचार्य के पास दीक्षित हो गया। वहां शास्त्र-अध्ययन आदि के द्वारा उसने अपने को तपस्या में लगा दिया। उसने सत्वभावनाओं की भावना की और घोर तपस्या में लग गया।

एक बार उसके छोटे भाई ने आचार्य से आकर अपने बड़े भाई के सम्बन्ध में पूछा और उसके दर्शन करना चाहा। किन्तु आचार्य ने उसकी तपस्या के कारण उससे मिलने से मना कर दिया। तब वह छोटा भाई भी वहीं दीक्षित हो गया। किन्तु भाई के प्रेम के कारण वह उसे देखना चाहता था। अपने आचार्य, उपाध्यय, साधु सबके द्वारा रोके जाने पर भी वह बड़े भाई की तरह उस कठोर तप में लीन हो गया।

फिर बड़े भाई को देवता आकर बन्दन करते थे, किन्तु छोटे भाई को नहीं। अतः वह उन पर क्रोधित हो गया। इससे देवता भी रुष्ट हुआ और उसने उस छोटे भाई की आंखों निकाल लीं। यह देखकर बड़े भाई ने देवता को निवेदन किया कि आप इस अज्ञानी को क्षमा कर इसकी आंखें फिर से ठीक कर दें। देवता ने कहा- अब यह सम्भव नहीं है। तब बड़े भाई ने उसी क्षण उन आंखों के गोलों को लेकर उसकी आंखे ठीक कर दीं। अतः शिष्य को आचार्य की बात माननी चाहिये और आचार्य को अपने शिष्य की रक्षा करनी चाहिये।[50]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपसर्ग-सहन :

मनुष्य चार प्रकार से उपसर्ग करते हैं।[51] यथा-

41. (क) देवसेना गणिका (हास्य) :- हास्यपूर्वक क्षुल्लक पर उपसर्ग करती हुई देवसेना गणिका दण्डित की गयी एवं उसे राजा के समक्ष उपस्थित किया गया। तब क्षुल्लक ने राजा को श्रीगृह के उदाहरण से प्रतिबोधित किया।

42. (ख) सोमभूति (प्रद्वेष) :- गजसुकुमार के श्वसुर सोमभूति ने प्रद्वेष भावना से गजसुकुमार पर उपसर्ग किये थे।

43. (ग) चन्द्रगुप्त (विमर्श) :- चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त राजा ने धर्मपरीक्षा के लिये अन्तःपुर की रानियों द्वारा कहने पर साधु पर उपसर्ग किया। साधु के द्वारा उसे श्रीगृह का उदाहरण देकर प्रतिबोधित किया गया।

44. (घ) स्त्रियों द्वारा काम-याचना :- ईर्ष्यालु चार प्रोषितपतिकाओं द्वारा पूरी रात एक संयमी साधु से काम-याचना कर उस पर उपसर्ग किया गया, किन्तु वह पर्वत की तरह अडिग रहा। पुरुष की दृढ़ता के कई कथानक जैन साहित्य में प्राप्त हैं।

45. असंदीन द्वीप जैसा आश्रम :- ऐसे दान आदि धर्म का उपदेश देना चाहिए, जिसमें पृथ्वीकाय आदि जीवों की हिंसा न हो। अन्यथा हिंसात्मक दान के कार्यों की प्रशंसा करने में दूषण है। जैसे असंदीन द्वीप (टापू) बहते हुए प्राणियों के लिए प्राणरक्षा का आश्रम होता है वैसे ही महामुनि के द्वारा जीवों की रक्षा करने वाला दान आदि धर्म का उपदेश है।

समाधिमरण :

समाधिमरण के प्रसंग में चार प्रकार के अपंडित मरणों को निर्युक्तिकार द्वारा उदाहरण देकर समझाया गया है।

46. (क) आर्य वैर (सपराक्रम मरण) :- आर्य वैर की कथा जैन साहित्य में अहुप्रचलित है। दस पूर्वों के ज्ञान को धारण करने वालों में आचार्य वैरसेण अंतिम थे। आसन्न मृत्यु को जानकर भी अन्होंने प्रमाद से अपने मरण के लिए पराक्रम किया और रथावर्त पर्वत के शिखर से गिर कर अपने प्राण त्यागे।

47. (ख) आर्य समुद्र (अपराक्रम मरण) :- आर्य समुद्र (उदधि) आचार्य स्वभाव से ही दुबले थे। बाद में जंघाबल के क्षीण हो जाने पर शरीर का कोई लाभ न देखकर अनशन धारण कर वह मृत्यु को प्राप्त हुए।

48. (ग) तोसलि आचार्य (व्याघात-मरणं) :- तोसलि नामक आचार्य जंगली भैंसों के डर से क्षुब्ध होकर चारों प्रकार के आहार को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए।

द्रव्य संलेखना में दोष :

49. साधु एवं राजा की कथा :- एक साधु ने 12 वर्ष तक संलेखना करके फिर मरण के लिए उद्यत होकर अपने आचार्य को निवेदन किया। आचार्य ने कहा- अभी और संलेखना करो। तब वह साधु क्रोधित होकर चमड़े और हड्डी मात्र शेष वाली अंगुली को चबाकर कहता है कि ऐसे शरीर में अब समाधि-मरण करने में क्या दोष है। आचार्य ने कहा कि तुमने मेरे मना करने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मात्र से अपनी अंगुली को चबा डाला। अतः अभी तुम्हारे भाव शुद्ध नहीं हैं। केवल द्रव्य संलेखना से क्या लाभ ? सुनो, मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।

किसी राजा की आंखे प्रतिक्षण झपकती रहती थीं। उसके वैद्य भी उसे ठीक नहीं कर पाये। तब बाहर से आये एक वैद्य ने कहा- "मैं आपकी आंखे ठीक कर दूँगा। किन्तु यदि आप मेरी दवाई से उत्पन्न क्षण भर की पीड़ा को सहन कर सकते हों तो।" तब राजा ने स्वीकृति दे दी। वैद्य ने जब राजा की आंख में अंजन लगाया तो राजा को तीव्र वेदना हुई। उसने तुरन्त आदेश दिया कि मुझे ऐसी पीड़ा देने वाले उस वैद्य को तुरन्त मार डाला जाय। किन्तु वैद्य को मारने का जब तक प्रबन्ध किया गया उसके पूर्व ही राजा की आंखें ठीक हो गयीं। वेदना जाती रही। तब प्रसन्न राजा ने वैद्य को पुरस्कृत किया।

शिष्य को आचार्य का उपदेश वैद्य की दवाई की तरह कठोर भी लगे तो भी मानना चाहिए। यदि कोई शिष्य बहुत समझाने पर भी नहीं माने तो आचार्य को चाहिए कि उसे गण से निकाल बाहर करे, जैसे कि पान की लता की रक्षा के लिए सड़े पान को बाहर फेंक देना पड़ता है।[53]

50. **अवंतिसुकुमाल (परीषह सहन)** :- उज्जैनी की सेठानी भद्रा का पुत्र अवन्ति सुकुमाल के नाम से प्रसिद्ध था। उसके 32 पत्नियां थीं। किन्तु एक मुनिराज के उपदेश से वह साधु बन गया। उसके पूर्व-जन्म की भाभी के जीव सियाली ने तप में रत खड़े हुए सुकुमाल मुनि के पैरों को खा डाला, किन्तु वे तप से विचलित नहीं हुए।[54] अतः साधु को शरीर के प्रति ममत्व न रखकर सभी परिषह सहना चाहिए। यह कथा जैन साहित्य में बहुप्रचलित है।

51. **निर्लोभी ब्रह्मदत्त** :- मुनि को चाहिए कि वह कामभोगों में न लुभाये। राजा आदि के द्वारा राज्य, स्त्री, धन, चक्रवर्तीपद आदि का प्रलोभन देने पर भी उनकी आकांक्षा न करे। सुद्धि-दर्शन मोहित ब्रह्मदत्त की तरह कोई निदान न करे।

52. **शुचिवादी की कथा** :- आचारांगचूर्णि में एक शुचिवादी की कथा है। वह शुचिवादी किसी एक घर से भिक्षा मांगकर खाता था और चौंसठ वार मिट्टी से स्नान करता था। किन्तु जब एक मरे हुए बैल की चांडालों को देने का प्रसंग आया तो शुचिवादी ने मना कर दिया और घर के नौकरों से ही उसे बैल की चीर-फाड़ करने को कहा।

53. **कछुआ और बादल** :- सेवाल और कमल-पत्रों से ढंका हुआ एक बड़ा तालाब था। उसमें कछुओं का परिवार रहता था। एक दिन तालाब की काई में कोई छेद हो गया। उससे ऊपर का नील गगन दिखायी पड़ने लगा। इसे देखकर एक कछुआ आनन्दित हुआ। उसने इस सुन्दर दृश्य को अपने मित्रों, स्वजनों को भी दिखाना चाहा। वह उन्हें बुलाकर जब तक वहाँ लाया तब तक वह काई का छिद्र ही लोप हो चुका था।

यहाँ पर तालाब संसार का प्रतीक है, कछुआ मनुष्य का। काई कर्मों का प्रतीक है, उसका छिद्र सम्यक्त्व का। नील गगन संयम का रूपक है और कछुए का वापिस लौटना संसार की आसक्ति का।[55] अनात्मप्रज्ञ के अवसाद का यह रूपक एक उदाहरण है। कच्छप का दृष्टान्त अन्यत्र भी प्रचलित है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं का प्रतिपाद्य विषय :

आचारांग के व्याख्या साहित्य में जो उपर्युक्त लगभग पचास कथाएं एत रूपक प्राप्त है उनके द्वारा आचारांग के मूल विषय को सुबोध बनाया गया है। मुख्यरूप से निम्नांकित विषय इन कथाओं द्वारा समझाये गये हैं-

क्रम	विषय	कथाएं
1.	जाति-स्मरण, (स्वमति),	1. धर्मरुचि एवं जितशत्रु राजा
	" " , (पर-व्याकरण),	2. गौतम स्वामी एवं महावीर
	जाति-स्मरण, (अन्य श्रवण),	3. मल्लि राजकुमारी एवं छह राजकुमार
2.	पूजा के लिए हिंसा-विरोध,	4. यशोधर और आटे का मुर्गा
3.	इन्द्रिय-विकल की तरह पृथ्वी-कायिक जीवों को वेदना,	5. जात्यंध मृगापुत्र
4.	आतंक-दर्शन द्वारा हिंसा से विरत,	6. धर्मघोष का प्रमादी शिष्य
5.	ममत्व और प्रमाद से हिंसा,	7. परशुराम कथा,
		8. चाणक्य द्वारा नंदकुलनाश,
		9. जरासन्ध द्वारा बदला
6.	काल-अकाल में विवेक-शून्यता,	10. प्रद्योत एवं मृगावती
7.	वृद्धावस्था के दुख,	11. धनसार्थवाह का कुटुम्ब
8.	विषय-भोगों में आसक्ति, विरक्ति,	12. ब्रह्मदत्त एवं, 13. सनत्कुमार
9.	अप्रतिज्ञ न होने से हानि,	14. स्कन्दाचार्य (क्रोध में)
		15. बाहुबली (मान में)
		16. मल्लिस्वामी का जीव (माया में),
		17. यति आभासा आदि (लोभ में), एवं
		18. वसुदेव दृष्टान्त (अप्रतिज्ञ)
10.	काल्पनिक मूढ व्यक्ति द्वारा स्वयं को ठगना,	19. दधिघटिका द्रमक का सपना एवं,
		20. मम्मण वणिक् (लोभ में)
11.	काम की अनासक्ति एवं अर्थ में मूर्च्छा,	21. मगधसेन गणिका एवं धन सार्थवाह
12.	धर्मकार्य की मर्यादा,	22. नन्द एवं चाणक्य,
		23. बुद्ध एवं भागवत,
		24. मल्लि उपाख्यान एवं भागवत,
		25. सत्यकि एवं रौद्र आदि
13.	इन्द्रिय विषयों की आसक्ति से दुःख,	26. पुष्पशाल एवं भद्रा (शब्द),
		27. अर्जुन तस्कर (रूप),
		28. गन्धप्रिय कुमार (गंध),
		29. सौदास राजा (रस),
		30. सत्यकि (स्पर्श), एवं,
		31. सुकुमारिका (कामासक्ति)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

14. हास्य-विनोद में तिरस्कार,
15. तृष्णाकुल व्यक्ति दुःखदायी,
16. भाव सम्यक्त्व की महिमा,
17. हिंसा सम्बन्धी मतवाद
18. साधक के उत्थान-पतन का क्रम
19. कामभोगों से कलह और आसक्ति,
20. विनय एवं अनुशासन,
21. उपसर्गों के कारण,
22. अहिंसक धर्मोपदेश,
23. समाधि-मरण के भेद,
24. परीषह-सहन,
25. अन्य रूपक,
32. गुणसेन एवं अग्निशर्मा
33. कपिल का लोभ
34. उदयसेन राजा के पुत्र
35. रोहगुप्त मन्त्री द्वारा धर्म-परीक्षा
36. नंदिषेण एवं, 37. उदायी नृप
38. वणिक् इन्द्रदत्त, 39. ललितांगक
40. जितशत्रु राजा के दो पुत्र
41. देवसेना गणिका (हास्य),
42. सोमभूति एवं गजसुकुमाल,
43. चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य,
44. संयमी साधु की दृढ़ता
45. असंदीन द्वीप रूपक
46. आर्य वैर स्वामी,
47. आर्य समुद्र,
48. तोसलि आचार्य एवं,
49. साधु एवं राजा की कथा
50. अवन्ति सुकुमाल एवं
51. निर्लोभी ब्रह्मदत्त,
52. शुचिवादी तथा,
53. कछुआ एवं बादल।

आचारांग के व्याख्या साहित्य की इन कथाओं का भाषा एवं कथा-तत्त्वों की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर कई नये तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। दार्शनिक शब्दों की व्याख्या में इन कथाओं का जितना महत्त्व है, उतना ही इनमें निहित सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से भी। जैन आगमों के अन्य व्याख्या साहित्य एवं स्वतंत्र कथा-ग्रन्थों की कथाओं के साथ भी इन कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। मध्ययुगीन भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब इनमें देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. आगमोदय समिति, सूरत, वि. सं. 1972-73 में निर्युक्ति एवं टीका सहित प्रकाशित आचारांग।
2. देवेन्द्र मुनि,जैन आगम साहित्य-मनन और मीमांसा, पृ.490
3. प्रभावकचरित्र, श्री अभयदेवसूरि प्रबन्ध, पृ. 104-5
4. आचारांगदीपिका-प्रथम श्रुतस्कन्ध, मणिविजयगणिवर ग्रन्थमाला लीव, वि. सं. 2005
5. राजबहादुर धनपतसिंह, कलकत्ता, सं. 1936 में टीकाओं सहित प्रकाशित आचारांग।
6. आ. शी. टीका, पृ. 41-42
7. आवश्यकचूर्णि, 1, पृ. 498, ओघनिर्युक्ति, 450 गा.
8. आ. शी. टीका, पृ. 41-42,धर्मकथानुयोग, स्कंध 2, पृ. 23

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

9. आ. चूर्णि. पृ. 13, ज्ञाताधर्मकथा, अ. 8
10. आ. शी. टीका पृ. 53
11. आ. चूर्णि पृ. 23, आ. शी. टीका पृ. 75
12. दव्वायंकदंग्गी अत्ताणं सव्वाहा नियत्तेइ :
अहियारंभाउ सया जह सीसो धम्मघोसस्स — आ. शी.-टीका पृ. 150
13. आ. चूर्णि पृ. 38
14. आ. शी. टीका. पृ. 197
15. आ. चूर्णि.पृ. 49
16. आ. शी. टीका. पृ. 198
17. आ. चूर्णि, पृ. 49
18. वही, पृ. 86, आ. शी. टीका, पृ. 198
19. आ. चू. पृ. 87
20. आ. टीका, पृ. 199
21. आ. शी. टीका, पृ. 208, 209
22. आ. चुर्णि. पृ. 221
23. वही. पृ. 19, . आ. शी. टीका. पृ. 248
24. आ. शी. टीका, पृ. 126, 143, 206 (आगमोदय समिति. 1916)
25. आ. शी. टीका, पृ. 261
26. आ. चूर्णि. 235, 236
27. आ. शी. टीका, पृ. 262
28. आवश्यक निर्युक्ति, गा. 349
29. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र, 1.8, सूत्र 64-78
30. आ. चूर्णि, पृ. 13, आ. शी. टीका, पृ.261
31. आ. शी. टीका, पृ. 262, 261, 273
32. आयारो, (मुनि नथमल), पृ. 115
33. आ. शी. टीका, पृ. 274, आ. चूर्णि. पृ. 86
34. आ. चूर्णि पृ. 86, आयारो (मुनि नथमल) पृ. 116
35. आ. शी. टीका, पृ. 289
36. आवश्यक चूर्णि 11, पृ. 174-176
37. प्राकृत प्रापर नेम्स, भाग-2, पृ. 589
38. आ. शी. टीका पृ. 303
39. आ. चूर्णि, भाग 1, पृ. 529-530
40. आ. चूर्णि. पृ. 106, आ. शी. टीका 304, व्यवहारभाष्य, 6,213
41. आ. शी. टीका, पृ. 304, आवश्यकचूर्णि भाग-1,पृ. 533
42. आ. चूर्णि, पृ. 106, आ. शी. टीका, पृ. 304 आवश्यकचूर्णि, 1534, बृहत्कल्प, 145
43. प्राकृत प्रापर नेम्स II, पृ. 589
44. आ. शी. टीका, पृ. 304
45. आ. शी. टीका, पृ. 316
46. आ. शी. टीका, पृ. 349
47. आचारांग निर्युक्ति गा. 220-221
48. आ.चूर्णि पृ. 173, आ. शी. टीका, पृ. 414
49. आ. शी. टीका, पृ. 433
50. आ. शी. टीका, पृ. 492-93

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

51. आ. शी. टीका, पृ. 506
52. आ. शी. टीका, पृ. 520, आ. निर्युक्ति गाथा 265-269
53. पडिचोइओ य कुविओ रण्णो जह तिक्ख सीयला आणा।
तंबोले य विवेणो घट्टणया जा पासाओ य।। आ. निर्युक्ति. गा. 269
54. आ. चूर्णि, पृ. 290, आ. शी. टीका, पृ. 576
55. आयारो, मुनि नथमल, पृ. 256

❋❋❋

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्टम

हरिभद्रसूरि की प्रतीक कथाएं

आचार्य हरिभद्रसूरि भारतीय साहित्य में कथा-सम्राट के रूप में विख्यात है। समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान जैसे प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने सैकड़ों लघु कथाएं भी लिखी हैं। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने हरिभद्र के कथा-साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[1] हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रकार की कथाओं में से उनकी कतिपय प्रतीक कथाओं के वैशिष्ट्य को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीन काल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है। प्रतीकों के प्रयोग से प्रतिपाद्य विषय का सरलता से स्पष्टीकरण हो जाता है। सीधी-सादी कथा प्रतीकों से अलंकृत हो उठती है। जैसे प्राकृत कथाओं सें नायक द्वारा समुद्र-यात्रा की जाती है। किन्तु प्रायः अधिकांश कथाओं में समुद्र के बीच में जहाज तूफान से भाग्न हो जाता है और किसी लकड़ी के पटिये के सहारे नायक समुद्र के तट पर जा लगता है। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि संसार एक समुद्र की भांति है, जहाँ कर्मों के तूफान उठते रहते हैं और शरीर-रुपी नौका भग्न होती रहती है। किन्तु पुरूषार्थी जीव रुपी नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।[2]

आचार्य हरिभद्र ने अपनी कथाओं में इस प्रकार के कई प्रतीकों का प्रयोग किया है। शब्द-प्रतीकों के अन्तर्गत कथा के पात्रों के विशेष नाम रखे गये हैं। समराइच्चकहा के नायक समरादित्य का नाम स्वयं एक प्रतीक है। समर का अर्थ है- युद्ध संघर्ष। नायक नौ भवों तक अपने प्रतिद्वन्दियों से जूझता रहता है। आदित्य का अर्थ है- सूर्य। सूर्य अस्त होने के बाद भी अपनी प्रखर आभा के साथ उदित होता रहता है। उसी प्रकार नायक भी अनले कर्तव्यों का पालन करता हुआ अन्ततः निर्वाण प्राप्त करता है। कुछ प्रतीक विशेष अर्थ को व्यंजित करने वाले होते हैं। जैसे- अधिक घमंड करने वाला कोई पात्र मरकर हाथी होता है। यहाँ मान का प्रतीक नाक है। पात्र ने अधिक मान किया इसलिए उसको लम्बी नाक-सूंड वाला हाथी का जन्म मिला। जब किसी दीपक या सूर्य के उदाहरण द्वारा केवलज्ञान का परिचय दिया जाता है तो वह भाव-प्रतीक का प्रतिनिधित्व करता है। प्राकृत कथाओं में ऐसे कई उदाहरण प्राप्त हैं। कुछ ऐसे दृश्य एवं बिम्ब भी प्राप्त होते हैं जो अमूर्त भावों को व्यक्त करते हैं। जैसे कीचड़ से अच्छादित लौकी भारी हो जाने से जल में डूब जाती है और कीचड़ की परत गल जाने पर हलकी होकर वह पानी के ऊपर आ जाती है, यह कथा-घटना बिम्ब प्रतीक के रूप में है। यहाँ लौकी जीवात्मा और कीचड़ कर्मो का प्रतीक है।[3] आगम साहित्य सें ऐसी कई प्रतीक कथाएं प्राप्त हैं। आचार्य हरिभद्र ने समराइच्चकहा में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। दूसरे भव की कथा में गर्भ में नायिका को सांप का स्वप्न आता है, जो इस बात का प्रतीक है[4] कि होने वाला बालक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता का विघातक होगा।

ऐसी प्रतीक कथाओं का विकास आगमिक कथाओं से हुआ हैं। आचारांगसूत्र में एक कच्छप की प्रतीक कथा है। उस कछुए को शैवाल काई के बीच में रहने वाले एक छिद्र से आकाश में चांदनी का सौन्दर्य दिखायी देता है। उस मनोहर दृश्य को दिखाने के लिए जब वह कछुआ अपने साथियों को बुलाकर लाया तो उसे वह छिद्र ही नहीं मिला, जिसमें से चांदनी दिख रही थी। यह प्रतीक आत्मज्ञान के निजी अनुभव के लिए प्रयुक्त हुआ है।[5] भारतीय कथाओं में कच्छप-प्रतीक प्रचलित रहा है।[6] इसी प्रकार सूत्रकृतांगसूत्र में पुण्डरीक की प्रतीक कथा है। एक सरोवर जल और कीचड़ से भरा हुआ है। उसके बीच में कई कमल खिले हुए हैं। उनके बीच में एक सफेद कमल है। चारों दिशाओं से आने वाले मोहित पुरुष उस सफेद कमल को प्राप्त करने के लिए प्रयास में कीचड़ में फंसकर रह जाते हैं। किन्तु वीतरागी पुरुष सरोवर के किनारे खड़ा रहकर भी सफेद कमल को अपने पास बुला लेता है।[7] इस प्रतीक कथा में सरोवर संसार का प्रतीक है, जल कर्मराशि का। कीचड़ विषय-भोगों का प्रतीक है। साधारण कमल जनपद के प्रतीक हैं एवं श्वेत कमल राजा का। चार मोहित पुरुष मतवादियों के प्रतीक हैं एवं वीतरागी पुरुष श्रमणधर्म का। ज्ञाताधर्मकथा में कई प्रतीक कथाएं प्राप्त है। मयूरी के अण्डों के प्रतीकों द्वारा श्रद्धा और संशय के फल को प्रकट किया गया हैं। दो कछुओं की प्रतीक कथा द्वारा संयमी एवं असंयमी साधकों के परिणामों को उपस्थित किया गया है। धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा आत्मा एवं शरीर के सम्बन्ध को स्पष्ट करती है। रोहिणी कथा पांच व्रतों की रक्षा एवं वृद्धि को प्रतीक द्वारा स्पष्ट करती है। उदक जात नामक कथा अनेकान्त के सिद्धांत को प्रतीकों से समझाती है।[8] उतराध्ययनसूत्र एवं उसके व्याख्या साहित्य में कई प्रतीक कथाएं उपलब्ध हैं। प्रतीक कथाओं की इस पृष्ठभूमि में आचार्य हरिभद्र की प्रतीक कथाएं विकसित हुई हैं।

आचार्य हरिभद्रसूरि की रचनाओं में समराइच्चकहा का प्रमुख स्थान है। इस कथा-ग्रन्थ में कई प्रतीक कथाएं अन्तर्निहित हैं। ग्रन्थ के दूसरे भव की कथा सिंहकुमार, कुसुमावली और आनन्द के जीवन से संबंधित है। प्रसंगवश संसार-स्वरूप का विवेचन करने के लिए इसमें मधु-बिन्दु दृष्टान्त की कथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गई है।[9] यह हरिभद्र की प्रतिनिधि प्रतीक कथा है। यद्यपि इस कथा का प्रचार भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से रहा है।[10] मधु-बिन्दु की संक्षिप्त प्रतीक कथा इस प्रकार है:-

"अनेक देशों एवं बन्दरगाहों में विचारण करने वाला कोई एक पुरुष अपने सार्थ के साथ एक सघन जंगल में प्रविष्ट हुआ। किन्तु चोरों द्वारा लूट लिये जाने पर वह अकेला जंगल में भटकने लगा। तभी एक जंगली हाथी उसके पीछे पड़ गया। उससे बचने के लिए वह पुरुष दौड़ कर एक पुराने कुएँ में वटवृक्ष के प्ररोह जटाओं को पकड़कर लटक गया। कुंए के बीच में लटके हुए उस व्यक्ति ने देखा कि नीचे मुंह फाड़े हुए एक अजगर उसको लीलने के लिए तैयार है। कुएँ की दीवालों पर चारों और सर्प घूम रहे हैं। जिस जटा को वह पकड़े हुए है उसके ऊपर बैठे हुए काले एवं सफेद दो चूहे उस जड़ को काट रहे हैं। वह जंगली हाथी भी अपनी सूंड से उस वटवृक्ष को उखाड़ने के प्रयत्न में उसे हिला रहा है। इससे वटवृक्ष पर स्थित मधुमक्खियों का एक झुण्ड उड़कर उस व्यक्ति के शरीर को काटने लग गया है। किन्तु मधु-मक्खियों के छत्ते से मधु की एक-दो बूंद उस व्यक्ति के मुख में पड़ जाती हैं, जिनको चाटकर वह रसास्वादन करने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लगता है।"

इस प्रतीक कथा को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि घना जगल संसार का प्रतीक है, वह भटका हुआ पुरुष जीव का। जगली हाथी मृत्यु का प्रतीक है। वह कुआ मनुष्य एवं देव गति का प्रतीक है। अजगर नरक एवं तिर्यंच गति का प्रतिनिधित्व करता है। चारों ओर के सांप क्रोध, मान, माया, एवं लोभ कषायों के प्रतीक हैं। वट वृक्ष का प्रारोह (जड़) मनुष्य की आयु है। दोनों काले एव सफेद चूहे कृष्ण और शुक्ल पक्षरूपी रात-दिन हैं, जो आयु को क्षीण करने में लगे हैं। मधुमक्खियों शरीर को लगने वाली व्याधियाँ हैं और जो मधु की एक-दो बूंद मुंह में आयी है वह संसार के क्षणिक सुख का प्रतीक है।[11]

मधुविन्दु दृष्टांन्त की यह प्रतीक कथा साहित्य, कला एवं दर्शन के क्षेत्र में बहुत प्रचलित हुई है।[12] आचार्य हरिभद्र ने इस प्राचीन कथा को जन-मानस तक पहुँचाने में विशेष योग किया है।

समराइच्चकहा के तीसरे भव की कथा में जालिनी और शिखिन् का वृतान्त वर्णित है। अग्निशर्मा एवं गुणसेन के जीव पुत्र एवं माता के रूप में यहाँ जन्म लेते हैं। पुत्र के प्रति माता के मन में पूर्वजन्म के निदान के कारण वैर उत्पन्न हो जाता है। अतः वह पुत्र को गर्भ के समय से ही दुश्मन समझने लगती है। इस भावना को विकसित करने में हरिभद्र ने कई प्रतीकों का सहारा लिया है। माता जालिनी को गर्भधारण करने के उपरान्त एक स्वप्न आता है कि उसने जो स्वर्ण-घट देखा है वह टूट जाता है।[13] स्वर्णघट टूटने की यह घटना एक सार्थक प्रतीक से जुड़ी हुई है। घट, उदर का प्रतीक है, कथा के रहस्य का प्रतीक है, एवं स्वर्ण गर्भ में स्थित जीव का। किन्तु स्वर्णघट का टूटना इस बात का प्रतीक है कि माता जालिनी स्वयं अपने गर्भ को नष्ट करने का प्रयत्न करेगी। अतः यह प्रतीक भविष्य की सूचना देने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

नवें भव की कथा में समरादित्य एवं गिरिषेण के प्रतिद्वन्द चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए कई सार्थक प्रतीकों का प्रयोग कथाकार ने किया है। इस कथा में गर्भवती माता को स्वप्न में सूर्य दिखायी पड़ता है।[14] सूर्य-दर्शन की यह घटना कथा के निम्न कार्यों को सूचित करती है-

1. गर्भस्थ बाल की तेजस्विता
2. संसार के प्रति समरादित्य की अलिप्तता
3. केवलज्ञान प्राप्ति का संकेत एवं
4. प्रकाश की तरह धर्मोपदेश का वितरण आदि।

इसी प्रकार समरादित्य का जन्म होते समय उसकी माता को कोई प्रसूतिजन्य क्लेश नहीं होता। यह इस बात का प्रतीक है कि उत्पन्न होने वाला शिशु जब अपनी मां को कष्ट नहीं देना चाहता तब वह दया, ममता, उदारता आदि गुणों का पुंज होगा।

आचार्य हरिभद्रसूरि का दूसरा महत्वपूर्ण कथा-ग्रन्थ धूर्ताख्यान है। भारतीय साहित्य में यह अपने ढ़ंग की अनूठी रचना है। इसमें पाँच धूर्तों की कथा है।[15] चार पुरुष एवं एक नारी पुराणों, काव्यों एवं प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त असंभव लगने वाली, अबौद्धिक एवं काल्पनिक कथाओं को कहकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। व्यंग के माध्यम से वे जन मानस को यथार्थ पुरुषार्थी जीवन की शिक्षा देना चाहते हैं। इस कथा में नारी धूर्ता खण्डपाना अपनी बुद्धि के चातुर्य से चारों धूर्तो पर विजय पा लेती है। हरिभद्र की यह पूरी ही कथा इस बात की प्रतीक है कि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नारी किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है। विजयी हो जाने पर भी नारी का अन्नपूर्णा का रूप धूमिल नहीं होता।[16] नारी द्वारा अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने का कार्य कराकर हरिभद्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि मध्ययुग के प्रारम्भ में ही नारी आधुनिकता की ओर अग्रसित हो चुकी थी।

आगम ग्रन्थों की व्याख्या के क्षेत्र में आचार्य हरिभद्र की विशेष भूमिका है। उन्होंने दशवैकालिक टीका में 30 महत्वपूर्ण प्राकृत कथाएं प्रस्तुत की हैं।[17] उपदेशपाद[18] नामक ग्रन्थ में लगभग 70 कथाएं उन्होने लिखी हैं। आवश्यकवृत्ति के टिप्पण[19] में भी संस्कृत में कुछ कथाएं दी गयी हैं। हरिभद्र की ये लघु कथाए कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इन लघु कथाओं में भी प्रतीकों का प्रयोग हरिभद्र ने किया है। प्रतीकों द्वारा भावों की अभिव्यंजना में कथाकार को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। प्राकृत लघु-कथाओं में प्राप्त कुछ प्रतीक कथाओं को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

दशवैकालिक हारिभद्रीयवृत्ति में एक वणिक् की कथा है। एक दरिद्र वणिक् रत्नद्वीप को गया। वहाँ व्यापार करके उसने कीमती रत्न प्राप्त किये। उन्हें लेकर जब वह वापिस लौटने लगा तो चोरों से बचने के लिए उसने असली रत्न भीतर छिपा लिये और हाथ में सामान्य पत्थर लेकर वह चल पड़ा। वह पागलों की भांति चिल्लाता हुआ कि रत्नवणिक जा रहा है, रास्ता पार करता रहा। रास्ते में उसने कीचड़ स्वादरहित जल को पीकर भी अपने रत्नों की रक्षा की और वापिस अपने घर लौट आया।[20]

हरिभद्र की इस कथा में रत्नद्वीप मनुष्यभव का प्रतीक है और वणिक पुत्र जीव का। रत्न रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतीक हैं। चोरों का भय, विषय-वासना का भय है, जिनसे रत्नत्रय को सुरक्षित रखना आवश्यक है। वणिकपुत्र ने मार्ग में जो स्वादरहित जल पीकर एवं अनेक कष्टों को झेलकर रत्नों की रक्षा की थी, वह इस बात का प्रतीक है कि रत्नत्रय की रक्षा भी इन्द्रिय-निग्रह एवं प्रासुक जल व भोजन करने से ही हो सकती है।

हरिभद्रसूरि के इसी ग्रन्थ में "घड़े का छिद्र" नामक एक अन्य कथा प्राप्त होती है।[21] पानी भरकर एक पनहारिन मार्ग से जा रही थी। किसी चंचल राजकुमार ने कंकड़ मारकर पनहारिन के घड़े में छेदकर दिया, जिससे पानी झरने लगा। किन्तु पनहारिन ने गीली मिट्टी द्वारा उस छिद्र को बन्द कर दिया और भरा हुआ घट वह अपने घर ले आयी। इस कथा में घड़ा साधक का प्रतीक है और पनहारिन शुभ भावों की। कंकड मारने वाला राजकुमार अशुभ भावों का प्रतीक है। छिद्र हो जाना योग की चंचलता एवं आस्रव का प्रतीक है। छिद्र को मिट्टी से बन्द कर देना गुप्ति अथवा सवर का प्रतीक है।[22] इस प्रकार यह कथा दार्शनिक प्रतीकों की कथा है।

आचार्य हरिभद्रसूरि का उपदेशपद नामक ग्रन्थ कथा साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व का है। इसमें जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करने वाली कथाएं हैं। प्रतीक कथा के रूप में "धन्य की पुत्र-वधुएँ" नामक कथा ध्यान आकर्षित करती है।[23] यद्यपि यह कथा मूल रूप सें ज्ञाताधर्मकथा में प्राप्त है[24] किन्तु हरिभद्र ने इसमें सुन्दर संवादों का प्रयोग करके इसे मनोहारी बना दिया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है:-

धन्य सेठ अपनी चार बहुओं की श्रेष्ठता की परीक्षा करने के लिए उन्हें धान के पाँच दाने यह कहकर दता है कि जब मैं मागू तब इन्हें वापिस कर देना। बड़ी बहू ने उन दानों की उपेक्षा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर उन्हें बाहर फेंक दिया। संझली बहु ने ससुर का प्रसाद समझकर उन्हें छील कर खा लिया। मंझली बहू ने उन दानों को कपडे में बांधकर पेटिका में सुरक्षित रख दिया। किन्तु छोटी बहू ने उन धान के दानों को अपने पीहर में भेजकर उनकी खेती करवा दी। फसल आने पर जितने दाने पैदा हुए उन्हें फिर जमीन में बो दिया। इस प्रकार पाँच वर्ष तक खेती करने पर वे पाँच दाने कई गाडियों में भरने लायक हो गये।

धन्य सेठ ने जब पाँच वर्ष बाद अपनी बहुओं से उन पाँच धान के दानों को मांगा तो उसे सब वृतान्त का पता चला। उसने छोटी बहू को घर की मालकिन बनाकर बड़ी को झाडू लगाने का काम, मझली को रसोई का काम एवं संझली बहू को भण्डार का काम सौंप दिया।

कथाकार इस कथा के प्रतीकों को स्पष्ट करते हुए कहता है कि धन्य सेठ गुरू का प्रतीक है एवं चारों बहुएं चार प्रकार के साधकों की प्रतीक। पाँच धान के दानें पांच व्रतों के समान हैं, जो इन व्रतों की रक्षा कर उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ाता है वही श्रेष्ठ पद प्राप्त करता है।[25]

हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों एवं प्रतीक कथाओं का यहाँ मात्र दिग्दर्शन हुआ है। यदि उनके पूरे साहित्य में से प्रतीकों को एकत्र किया जाय तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए तो भारतीय कथा साहित्य के कई पक्ष उजागर हो सकते हैं। धर्म और दर्शन को समझने की एक नई दृष्टि जाग्रत हो सकती है।

संदर्भ

1. शास्त्री, नैमिचन्द्र, हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन,वैशाली, 1965
2. द्रष्टव्यः जैन, प्रेम सुमन, "पालि-प्राकृत कथाओं में प्रयुक्त अभिप्राय" नामक लेख, राजस्थान भारती, बीकानेर, 1969.
3. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, छठा अध्ययन
4. समराइच्चकहा, सम्पा-जैकोबी, प्र. एशियातिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, , 1926, भव 2, पृ.117
5. आचारांगसूत्र, अ.6,उ.
6. मज्झिम निकाय, भाग 3, बालपण्डितसुत्त, पृ. 239-40
7. सूत्रकृतांगसूत्र द्वितीय श्रुत.प्र.अ., सूत्र 638-44
8. द्रष्टव्य, जैन, प्रेमसुमन, " आगम कथा-साहित्य मीमांसा" धर्म-कथानुयोग भाग 2 की भूमिका, पृ. 14
9. समराइच्चकहा, जकोबी भव 2 पृ. 110-114
10. वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, पृ. 8
11. जहा सो पुरिसो तहा संसारी जीवो, जहा वण-हत्थी तहा मच्चू .....जहा महूयरा तहा आगंतुगा सरीरसंगया य वाही।
12. द्रष्टव्य, इसी पुस्तक में अध्याय तेरह।
13. समराइच्चकहा, सम्पा-जैकोबी, भव 3, पृ.134,
14. वही, भव 2, पृ. 703,
15. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण 1985 पृ. 344
16. धूर्ताख्यान, सम्पा. ए.एन. उपाध्ये, बम्बई, 1945, 5वां आख्यान
17. दशवैकालिकसूत्र हरिभद्रवृत्ति, मनसुखलाल महावीर प्रेस, बम्बई पिण्डवाड़ा से वि.सं.2037 में पुनः प्रकाशित
18. उपदेशपद, शाह लालचन्द नन्द लाल, बड़ौदा, उपदेशपद मूल एवं गुजराती अनुवाद, जैन धर्म

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्याप्रसारक वर्ग पालीताणा, 1909

19. आवश्यकवृत्ति टिप्पण, देबच्न्द लाल भाई, अहमदाबाद
20. दशवैकालिक हा.वृ. प्रकाशक, भारतीय प्राच्यतत्व प्रकाशन, पिंडवाड़ा, गाथा 37 की वृत्ति पृ. 13
21. वही गाथा 177 वृत्तिगा. 4, पृ. 63
22. इसी प्रकार नाव एवं छिद्र का प्रतीक जैनदर्शन के अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त है।
23. उपदेशपद. गाथा 172-179 पृ. 144
24. ज्ञाताधर्मकथा, सातवां अध्ययन, रोहिणी-कथा।
25. एवामेव समणाउसी जाव पंच महव्वया संवड़िढया भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं जाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणीया- ज्ञाताधर्मकथा, 7.1

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम

कथाओं में अहिंसा दृष्टि

प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश-भाषाओं की प्राचीन कथाओं में अहिंसा के स्वरूप, महत्त्व एवं अहिंसा-पालन के परिणामे को प्रतिपादित किया गया है। तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र एवं महापुरूषों की कथाओं मे अहिंसा के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः सिद्धान्त ग्रन्थों में प्राप्त अहिंसा के स्वरूप का व्यावहारिक रूप जैन कथा-साहित्य में देखा जा सकता है। यह कथा-साहित्य विशाल है। अतः प्राकृत की कुछ प्रतिनिधि कथाओं के आधार पर ही अहिंसा के स्वरूप को समझने का यहाँ प्रयत्न किया जा सकता है।

प्राकृत कथा-साहित्य में तीर्थंकरों के जीवन की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं। अहिंसा से सम्बन्धित कुछ प्रसंग यहाँ विचारणीय हैं। भगवान् ऋषभदेव के समय में मानव की आवश्यकताएँ कम थीं। अतः हिंसा का वातावरण भी कम था। लेकिन जैसे-जैसे मानव सामाजिक-प्राणी होने लगा, तो उसे सहिष्णुता, अनुकम्पा आदि अहिंसक गुणों की अधिक आवश्यकता पड़ी। कल्पवृक्षों की कमी अर्थात् वनसम्पदा का जीवन के लिए अपर्याप्त होना कहीं प्राणियों के परस्पर वध को बढ़ावा न दे, मांसाहार की प्रमुखता न हो जाय, इस दृष्टि से ऋषभदेव ने सामाजिकता की ओर बढ़ते हुए उस समय के मानव को कृषि एवं अन्य जीविका के साधनों की शिक्षा प्रदान की थी।[1] मनुष्य जंगली, क्रूर एवं असुन्दर ही न बना रहे, इसलिए उन्होंने विभिन्न कलाओं और शिल्पों की ओर भी मानव को प्रेरित किया। अतः जीवन की आध्यात्मिकता की समझ को जागृत करने के लिए भगवान् ऋषभदेव के ये अहिंसक प्रयत्न थे।

तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राणियों के प्रति अनुकम्पा इतिहास प्रसिद्ध है। उनके जीवन की कथा तो मात्र इतना ही कहती है कि पशुओं के बाड़े को देखकर उनके अकारण वध की सूचना से उन्होंने तपस्वी-जीवन धारण कर लिया। किन्तु, नेमिनाथ के जीवन में इतना बड़ा परिवर्तन अचानक और अकारण नहीं हुआ था। इस घटना के द्वारा कृष्ण उन्हें कुछ सिखाना चाहते थे। किन्तु नेमिनाथ अपने अहिंसक चिन्तन के द्वारा सारे जगत् को ही इस घटना द्वारा बहुत कुछ सिखा गये। जन-जन के अन्तर-मानस में प्राणियों पीड़ा की अनुभूति इतनी तीव्रता के साथ शायद पहली बार ही अनुभव की गई होगी। मांसाहार के विरोध में नेमिनाथ का यह सफल अहिंसक प्रयोग था।[2] और संभवतः उसका ही यह प्रभाव था कि नेमिनाथ के समय में साधुओं का जब चातुर्मास होता था, तो वासुदेव श्री कृष्ण ने चतुर्मास में राज्य-सभा के आयोजनों को बंद करा दिया था, ताकि आवागमन, भीड़-भाड़ आदि के कारण प्राणियों की अधिकतम हिंसा से बचा जा सके।[3]

पार्श्वनाथ का जीवन अहिंसा का जीता-जागता उदाहरण है। उन्होंने अपने पूर्व-जन्म और तपस्वी-जीवन में क्षमा की साकार मूर्ति को उपस्थित किया था। वध, क्रोध, वैर, बदला आदि अनेक हिंसा के कार्यों का सामना उन्होंने अहिंसात्मक साधनों से किया। तपस्वी कमठ द्वारा प्रज्वलित यज्ञाग्नि मे जल रहे नाग की रक्षा उन्होंने अपने कुमार-जीवन मे ही की थी।[4] यह एक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा प्रतीक है, जो अहिंसा के सूक्ष्म भावों को व्यक्त करता है। यदि नेमिनाथ ने जंगल के तृण खानेवाले मूक प्राणियों को हिंसा से बचाया था, तो पार्श्वनाथ ने एक कदम आगे बढ़कर विषैले नाग की रक्षा भी अहिंसक दृष्टि से आवश्यक मानी। क्योंकि प्राणी स्वभाव का कैसा भी हो, आकरण उसका वध करने का अधिकार किसी बड़े से बड़े और धार्मिक व्यक्ति को भी नहीं है।

भगवान् महावीर का जीवन-चरित्र अहिंसा के स्वरूप को और अधिक उजागर बनाता है। उन्होंने सर्प या संगम देवता द्वारा निर्मित विषधर नाग पर सहजता से और निर्भयता पूर्वक विजय प्राप्त कर यह स्पष्ट कर दिया था कि शक्तिशाली व्यक्ति की भी हिंसात्मक वृत्ति टिकाऊ नहीं, क्षणिक ही होती है। अहिंसक चित्त निरंतर विजयी रह सकता है।[5] महावीर अहिंसा के विस्तार के लिए उसके मूलभूत कारणों तक पहुँचे हैं। उनके जीवन की हर घटना दूसरे के अस्तित्व की रक्षा करते हुए एवं उसके भी मन को न दुखाते हुए घटित होती है। संभवतः परिग्रह, अनावश्यक संग्रह दूसरे को पीड़ा पहुँचाने में सबसे बड़ा कारण है। इसीलिए भगवान् महावीर ने पाचवें-व्रत अपरिग्रह को एक नयी दिशा प्रदान की।[6] अनेकान्तवाद द्वारा उन्होंने मानसिक हिंसा को भी तिरोहित करने का प्रयत्न किया और वीतरागता द्वारा वे आत्मिक अहिंसा के प्रतिष्ठापक बने।

हिंसा के विभिन्न रूप :

प्राकृत-कथा-साहित्य में युद्ध, प्राणी-वध एवं मनुष्य-हत्या आदि के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। इनको पढते समय यह प्रश्न उठता है कि अहिंसक-समाज द्वारा निर्मित इस साहित्य में हिंसा का इतना सूक्ष्म वर्णन क्यों और किसलिए हुआ ? प्राकृत के प्राचीन आगम-ग्रन्थों में सूत्रकृतांग आदि में मांस-विक्रय के विभिन्न उल्लेख हैं।[7] विपाकसूत्र में अण्डे का व्यापार, मछली का व्यापार आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है।[8] आवश्यकचूर्णि, वृहत्कल्पभाष्य, राजप्रश्नीयसूत्र आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि ईर्ष्या, क्रोध, अपमान आदि के कारण, माता पुत्र की, पत्नी पति की, बहू सास की, मंत्री राजा की हत्या करने में भी संकोच नहीं करते थे।[9] प्राकृत-कथाओं में वर्णित प्राणी-वध, मनुष्य-हत्या, शिकार, युद्ध आदि के ये प्रसंग इस बात की सूचना देते हैं कि तीर्थंकरों ने जिस अहिंसा-धर्म का प्रतिपादन किया है, उसे यदि यर्थाथ रूप में नहीं समझा गया, तो उपर्युक्त परिणाम ही होने हैं। हिंसा और अहिंसा में अधिक दूरी नहीं है। सिक्के के दो पहलू के समान इनका अस्तित्व है। केवल व्यक्ति की भावना ही हिंसा और अहिंसा के बीच सीमा-रेखा खींचने में सक्षम है। अतः प्राकृत-कथा-साहित्य में वर्णित हिंसात्मक वर्णनों की बहुलता इस बात की द्योतक है कि महावीर के बाद अहिंसक समाज सर्वव्यापी नहीं हो सका। किन्तु उस अन्धकार में भी उसके हाथ में अहिंसा का दीपक अवश्य था। जिसकी कुछ किरणें जैन-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं।

अहिंसा के प्रकाश-स्तम्भ :

जैन-कथा-साहित्य में संभवतः भरत एवं बाहुबली की कथा सर्वाधिक प्रभावकारी अहिंसक कथा है। भरत और बहुबली के जीवन-चरित्र से यह पहली बार पता चलता है कि युद्ध की भूमि में भी अहिंसक-युद्ध का प्रस्ताव हो सकता है। दोनों की सेनाओं के हजारों प्राणियों के वधके प्रति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न करुणा इस कथा में साकार हो उठी है। दो राजाओं के व्यक्तिगत निपटारे के लिए लाखों व्यक्तियों के मरण के आंकड़ों से नहीं, अपितु व्यक्तिगत भावनाओं और शक्ति परीक्षण से भी उनकी हार-जीत स्पष्ट हो सकती है। इस दृष्टि से दृष्टि-युद्ध, मल्ल-युद्ध और वाक्र-युद्ध आदि का प्रस्ताव इस कथा में अहिंसा का प्रतीकात्मक घोषणा-पत्र है।[10]

नायाधम्मकहा की दो कथायें अहिंसा के सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण एवं बोधपूर्ण हैं। मेघकुमार के पूर्वभव के जीवन के वर्णन-प्रसंग में मेरुप्रभ हाथी की कथा वर्णित है। यह हाथी आग से घिरे हुए जंगल में एकत्र छोटे-बड़े प्राणियों के बीच में खड़ा है। हर प्राणी सुरक्षित स्थान खोज रहा है। इस मेरुप्रभ हाथी ने जैसे ही खुजली के लिए अपना एक पैर उठाया कि उसके नीचे एक खरगोश का बच्चा खाली स्थान देखकर वहाँ आकर बैठ गया। हाथी खुजली मिटाकर अपना पैर नीचे रखना चाहता है, किन्तु जब उसे पता चला कि एक छोटा प्राणी उसके पैर के संरक्षण में आ गया है, तो उसकी रक्षा के लिए मेरुप्रभ हाथी अपना पैर उठाये ही रखता है। और अन्ततः तीन दिन-रात वैसे ही खड़े रहने पर वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। किन्तु वह उस छोटे-से प्राणी खरगोश तक धूप और आग की गर्मी नहीं पहुँचने देता।[11] अहिंसा का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा ?

इसी ज्ञाताधर्मकथा में धर्मरुचि मुनि की प्राणियों के प्रति अनुकम्पा का उत्कृष्ट उदाहरण वर्णित है। यह कथा हिंसा और अहिंसा के दोनों पक्षों को उजागर करती है। नागश्री जैसी स्वार्थी गृहस्थिन ने विषाक्त भोजन को केवल इसलिए साधु के पात्र में डाल दिया कि उसकी निंदा न हो कि उसके द्वारा बनाया गया भोजन शाक कड़ुआ है, विषाक्त है। किन्तु दूसरी ओर धर्मरुचि को जब यह पता लगा कि उसे भिक्षा में प्राप्त शाक कड़ुआ और विषाक्त है, तो गुरु-आज्ञा से वह उसे निर्जन स्थान पर फेंकने को उद्यत हुए। किन्तु यही उनकी अनुकम्पा सामने आ गई और उन्होंने यह देखा कि इस एक बून्द शाक के लिए हजारों चीटियाँ यहाँ एकत्र हो गई हैं। यदि पूरा शाक यहाँ डाल दिया गया तो हजारों, लाखों प्राणियों का अनायास वध हो जायगा। अतः वह करुणाशील साधु उस शाक को स्वयं पी गया।[12] करोड़ों प्राणियों के प्राण-वध से एक का प्राणान्त होना उन्हें अधिक श्रेयस्कर लगा। यह इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि जीवन की दृष्टि से सभी प्राणियों का मूल्य बराबर है। इसलिए प्राकृत-कथाओं का यह प्रमुख स्वर रहा है कि अहिंसा का यथासंभव अधिक से अधिक पालन किया जाए और हिंसा के वातावरण को समाप्त किया जाय।

अहिंसक समाज-निर्माण के प्रयोग :

प्राकृत-कथाओं में अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए कई प्रयोग किये गये हैं। मानव के जीवन में अहिंसा के महत्त्व की इतनी भावना थी कि व्यक्ति यह प्रयत्न करता था कि यथासंभव हिंसा का निषेध किया जाय। सूत्रकृतांगसूत्र में आर्द्रकुमार मुनि की कथा वर्णित है। उन्होंने हिंसा के मूल कारण मांस-भक्षण का युक्ति-पूर्वक निषेध किया है।[13] आवश्यकचूर्णि में अरहमित्त श्रावक के पुत्र जिनदत्त की कथा है। वह एक बार भयंकर रोग से पीड़ित हो जाता है। वैद्य उसे औषधि के साथ् मांस-भक्षण आवश्यक बताते हैं। किन्तु वह अपने स्वास्थ्य के लिए अन्य प्राणियों के वध से प्राप्त होनेवाले मांस का भक्षण करना स्वीकार नहीं करता है। वसुदेवहिण्डि की एक कथा में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चारुदत्त अपनी यात्रा के लिए बकरे को मारकर उसकी खाल लेना पसन्द नहीं करता, जबकि उसका मित्र उस दुर्गम प्रदेश में उसे आवश्यक बताता है।[14]

आगम-भाष्य-साहित्य में कालक कसाई के पुत्र सुलुस की कथा प्रसिद्ध है। उसका पिता प्रतिदिन पाँच सौ भैंसे मारता था। अतः पिता की मृत्यु हो जाने पर सुलुस को भी जब कुल की परम्परा का निर्वाह करने के लिए कहा गया कि वह परिवार के मुखिया का दायित्व किसी पशु पर तलवार का एक वार करके स्वीकार करे, तो सुलुस ने इस आकरण हिंसा का विरोध किया और कहा कि इस हिंसा के पाप का भागी केवल मुझको होना पड़ेगा। तब परिवारवालों ने कहा कि तुम पशु को काटो, उसमें हम सब हिस्सेदार होंगे। सुलुस ने अन्हें शिक्षा देने के लिए तलवार उठाकर उसका वार अपने पैर पर ही कर लिया। यह देखकर सब आश्चर्य चकित रह गये। तब सुलुस ने कहा अब आप सब मेरे पैर की इस पीड़ा को थोड़ी-थोड़ी बाँट लें, ताकि मुझे कष्ट न हो। परिवारवाले निरुत्तर हो गए। क्योंकि किसी की पीड़ा को कौन बाँट सकता है ? सुलस ने उन्हें समझाया कि इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को मारने पर उसे पीडा होती है। अतः हिंसा कभी भी सुखदायी नहीं हो सकती।[15]

बलि में होनवाले पशुवध को रोकने के लिए भी जैन-कथा-साहित्य में अनेक प्रसंग आये हैं। अजमेर के पास हर्षपुर नामक स्थान पर बकरे की बलि को रोकने के लिए राजा पुष्यमित्र के समय में आचार्य प्रियग्रन्थ ने श्रावकों की प्रेरणा से बकरे पर मन्त्र प्रयोग कर उसे बलि से बचाया तथा उसकी वाणी में अहिंसा के महत्व को प्रतिपादित कराया है।[16] पशुओं को अभयदान देने की यह बड़ी मार्मिक कथा है। इसी तरह भाष्य-साहित्य में वर्णित मातंग यमपाश की कथा जीव-बध-निषेध की प्रसिद्ध कथा है। चांडाल कुल में जन्म लेने पर भी यमपाश पर्व-दिनों में जीव-बध नहीं करता था।[17] उसकी यह प्रतिज्ञा कई प्राणियों को जीवन प्रदान करती है और अन्ततः राजा को भी जीव-वध की निषेध-आज्ञा प्रसारित करनी पड़ती है।

प्राणीवध की निषेधाज्ञा :

प्राकृत-कथाओं में अहिंसा के प्रचार के लिए राजाओं द्वारा अपने राज्य में अमारि-पडह बजवाये जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। अमारि-घोषणा हो जाने पर कोई भी व्यक्ति किसी प्राणी का वध नहीं कर सकता था। उन दिनों मांस आदि की दुकानें भी बन्द कर दी जाती थीं। उपासकदशांग में वर्णित महाशतक श्रावक की कथा से ज्ञात होता है कि राजगृह नगर में अमारि-घोषणा हो जाने से रेवती को मांस मिलना बन्द हो गया था।[18] एक कथा से ज्ञात होता है कि राजा सौदास ने अष्टान्हिक-पर्व पर आठ दिन तक अमारि की घोषणा करवायी थी।[19] राजस्थान में, मध्ययुग तक राजाओं द्वारा ऐसी अमारि-घोषणाएँ किये जाने के उल्लेख मिलते हैं।[20] उपदेशमाला में कहा गया है कि सारे संसार में अमारि-घोषणा किये जाने का फल उस व्यक्ति को प्राप्त होता है, जो किसी एक दुःखी प्राणी को भी जिनवचन में प्रतिबोधित कर देता है।

हिंसा के दुष्परिणाम :

जैन-कथा-साहित्य ने प्राणी-वध को रोकने एवं दूसरे को न सताने की भावना को दृढ़ करने के लिए एक कार्य यह भी किया है कि हिंसक कार्यों में लिप्त व्यक्तियों को जन्म-जन्मान्तरों में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलनेवाले फल की सही तस्वीर खींची है। विपाकसूत्र की कथाएँ बताती हैं कि अण्डे के व्यापारी निम्नक, प्राणीवध करनेवाले क्षणिक कसाई एवं सूरदत्त मच्छीमार को अपने हिंसक कार्यों के कारण कितनी यातनाएँ सहनी पड़ी हैं।[21] बृहत्कल्पभाष्य आदि ग्रन्थों में हत्या करनेवाले के लिए अनेक प्रकार की सजाएँ दिये जाने का उल्लेख है। कर्म-परिणाम एवं सजा की कठोरता ने भी हिंसक-भावना को क्रमशः कम करने में मदद की है। एक हिंसा दूसरी हिंसा को जन्म देती है। अतः इससे वैर की लम्बी परम्परा विकसित हो जाती है। इस बात को कई प्राकृत-कथाओं में उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।[22]

अभय से हृदय-परिवर्तन :

प्राकृत की कुछ कथाएँ अहिंसा के अभय तत्त्व को उजागर करती हैं। कितना ही भयंकर एवं क्रोधी हत्यारा क्यों न हो, उसकी यह स्थिति अधिक समय तक नहीं टिक सकती। उसके हृदय में भी किसी घटना विशेष के द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। मोग्गरपाणि यक्ष से प्रभावित अर्जुन की कथा बहुत प्रसिद्ध है। वह अपनी पत्नी के अपमान का बदला लेने के लिए प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता था। उसके इस उत्पात के कारण लोगों का जीना मुश्किल हो गया था। किन्तु अहिंसा और अभय के पुजारी सुदर्शन श्रावक ने अर्जुन मालाकार के हृदय को भी पदिवर्तित कर उसे साधक बना दिया। हत्यारा अर्जुन क्षमा की मूर्ति बन गया।[23] इसी तरह दृढ़प्रहारी की कथा भी बड़ी मार्मिक है। उसने क्रोध के कारण एक पति-पत्नी और उनकी गाय को तलवार के एक ही बार से समाप्त कर दिया। किन्तु गर्भवती गाय के तड़पते हुए बछड़े को देखकर दृढ़प्रहारी कांप उठा।[24] हिंसा के चरम उत्कर्ष ने उसे अहिंसक बना दिया। इस दर्दनाक हिंसा का प्रायश्चित करने के लिए वह साधु बन गया।

अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा से बचना ही नहीं है, अपितु अहिंसा के अतिचारों से भी दूर रहना है। प्राकृत कथाओं में यह स्पष्ट उल्लेख है कि वध, बन्धन छेदन, अतिभारारोपण एवं दूसरे प्राणी के खान-पान के निरोध की क्रियाएँ भी हिंसा हैं। इनसे बचकर ही अहिंसा का पालन हो सकता है। कहारयणकोस में इनकी सुन्दर कथाएँ दी हैं।[25] प्राणी-वध तो दुःख देनेवाला है ही, किन्तु यदि किसी को कष्ट पहुँचाने एवं किसी के वध करने की बात मन में भी उद्‌बुद्ध हो जाय अथवा किन्हीं प्रतीकों के द्वारा वध की क्रिया पूरी कर ली जाय, तो भी अनेक जन्मों तक उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।[26] कालक कसाई 500 भैंसों का प्रति दिन वध करता था, इस क्रिया को रोकने के लिए उसे बन्दी बनाकर रखा गया, किन्तु वहाँ पर भी उसने अपने शरीर के मैल के 500 भैंसे बनाकर उनकी हत्या करने का संकल्प पूरा किया और उसके कारण उसे नरकों की यातना सहनी पड़ी।[27]

रक्षात्मक हिंसा का दायरा :

प्राकृत-कथाओं में अहिंसा के उस दूसरे पक्ष को भी छुआ गया है, जहाँ कई कारणों से आत्म-रक्षा के रूप में विरोधी हिंसा करना आवश्यक हो जाता है। भाष्य-कथा-साहित्य में ज्ञात होता है कि संघ की रक्षा के लिए संघ में धनुर्धर साधु भी होते थे।[28] कोंकणक साधु ने जंगल में संघ की रक्षा करते हुए एक रात में तीन शेर मार दिए थे।[29] आचार्य कालक की कथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रसिद्ध है ही कि उन्होंने साध्वी के सतीत्व की रक्षा के लिए एक राजा के राज्य पर दूसरे राजा से चढ़ाई करवा दी थी।[30] पार्श्वनाथ ने भी यवनराज से प्रभावती की रक्षा के लिए युद्ध को स्वीकार किया था। गृहस्थ श्रावक के जीवन में इस प्रकार की आरंभी एवं विरोधी हिंसा होती ही है।

प्राकृत-कथाओं के उपर्युक्त कुछ प्रसंगों से स्पष्ट है कि अहिंसा किसी जाति या वर्ग विशेष की बपौती नहीं है। जीवन के किसी भी स्तर और कोटि का व्यक्ति अहिंसा में विश्वास रख सकता है। यथा-शक्ति वह उसे अपने जीवन में उतार सकता है। पशु-जगत् भी अहिंसा, अनुकम्पा, पर-पीड़ा आदि का अनुभव करता है। अतः उसका जीवन रक्षणीय है। ये कथाएँ यह भी उजागर करती हैं कि हिंसा की परिणति दुःखदायी ही होती है, चाहे वह किसी भी स्तर या उद्देश्य से की जाय। किन्तु हिंसक कार्यों में लिप्त व्यक्ति इतना दयनीय भी नहीं है कि उसे सुधरने का अवसर ही न मिले। वह किसी भी क्षण अपनी हिंसा की उर्जा को अहिंसा की ओर मोड़ सकता है। निर्भयता और प्रेम से उसे कोई प्रेरित करनेवाला मिलना चाहिए। कथाओं का केन्द्र-बिन्दु यह जान पड़ता है कि आत्मा के स्वरूप के प्रति उदासीनता एवं अज्ञान ही हिंसक भावनाओं को जन्म देता है तथा वही परपीड़ा का कारण है। अतः अहिंसा के परिपालन के लिए अपरिग्रही, संयमी, अप्रमादी होना आवश्यक है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद को जीवन में उतारने से बौद्धिक अहिंसा का भी पालन किया जा सकता है तथा आत्मिक अहिंसा की पूर्ण उपलब्धि तो वीतरागता की ओर बढ़ने से ही होगी।

संदर्भ

1. अहिंसा का तत्त्वदर्शन (मुनि नथमल), ऋषभदेवः एक परिशीलन, (देवेन्द्रमुनि)।
2. उत्तराध्ययनसूत्र, अ.22, ग. 14-20
3. कर्मयोगी कृष्णः एक अनुशीलनः देवेन्द्रमुनि।
4. सिरिपासनाहचरियं, 14-30
5. महावीरचरियं-नेमिचन्द्रसूरि 8, 22
6. भगवान् महावीरः एक अनुशीलन (देवेन्द्रमुनि)।
7. सूत्रकृतांगसूत्र 2, 6, 9, 2
8. विपाकसूत्र, पृ. 22
9. जैन-आगम-साहित्य मेंः भारतीय समाज-डॉ. जगदीशचन्द्र पृ. 56-84
10. आदिपुराण-आचार्य जिनसेन, ऋषभदेव कथा।
11. णायाधम्मकहा, अध्ययन 1
12. वही, अ. 16
13. सूत्रकृतांग 2, 6, 27-42
14. प्राकृत का जैन- कथा साहित्यः डॉ. जगदीशचन्द्र जैन।
15. जैन कहानियां, भाग 2, मुनि महोन्द्रकुमार 'प्रथम'
16. कल्पसुखबोधिका टीका, अधि. 8ः जैन-कथामाला (भाग 15) मुनि मधुकर
17. जैन कहानियाँ, भाग 21
18. उपासगदसाओ, अध्ययन 8

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

19. जैन-कहानियाँ-भाग 7, कथा 9
20. मज्झमिका नगरी का शिलालेख
21. विपाकसूत्र, दुखविपाक, अ. 8
22. (i) समराइच्च-कहा: सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ. झिनकू यादव,
(ii) हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन-डॉ. नेमिचन्द्र जैन, शास्त्री,
(iii) कुवलयमालाकहा: का सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ. प्रेमसुमन जैन।
23. अन्तकृद्दशांग, तृतीय अध्ययन, वर्ग 6
24. जैन कहानियाँ भाग 2, कथा 3
25. कहारयणकोस, भाग 2, कथानक 34; जैन-कथामाला, भाग 38,
26. (i) यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन:- डॉ गौकुलचन्द्र जैन
(ii) यशस्तितक एण्ड इंडियन कल्चर- डॉ. हिन्दिकी
27. जैन कहानियाँ, भाग 2 कथा 9
28. बृहत्कल्पभाष्य, 1-3014
29. निशीथचूर्णि पृ. 100
30. निशीथचूर्णि 2860

❋❋❋

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम

आरामसोहाकहा (पद्य) : एक परिचय

प्राकृत कथा साहित्य में आरामशोभाकथा एक महत्वपूर्ण लौकिक कथा है। जिनपूजा के महात्म्य को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से यह कथा उदाहरण के रूप में कही गयी है। प्राकृत, संस्कृत, गुजराती एवं हिन्दी भाषा में आरामशोभाकथा को कई कथाकारों ने प्रस्तुत किया है, किन्तु मूल प्राकृत कथा अभी तक स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित नहीं हो सकी है। इस अप्रकाशित आरामसोहाकहा की पाण्डुलिपि मुझे लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मंदिर, अहमदाबाद, के ग्रन्थभण्डार का सवेंक्षण करते समय प्राप्त हुई थी। प्राकृत गाथाओं में निबद्ध इस कथा की यह अभी तक उपलब्ध एकमात्र पाण्डुलिपि है। यद्यपि इस कथा की अन्य प्रतियों के विभिन्न ग्रन्थभण्डारों में प्राप्त होने के संकेत है किन्तु अभी वे उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।

आरामसोहाकहा की इस पाण्डुलिपि में कुल 10 पन्ने हैं, जो दोनों ओर लिखे हैं। इसमें कुल 320 प्राकृत गाथाएं हैं। किन्तु आदि, अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं है। अतः रचनाकार, लिपिकार आदि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। प्राकृत साहित्य के अन्य किसी ग्रन्थ में भी प्राकृत पद्यों में रचित आरामसोहाकहा एवं उसके कर्त्ता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। अतः अभी इस रचना को अज्ञातकर्तृक ही मानना होगा। आरामसोहाकहा की परम्परा एवं अन्य पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में विचार करने के पूर्व इस कथा को संक्षेप में प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।

कथावस्तु :

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुशार्त नामक देश है। वहाँ बलासक नामक ग्राम में अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसके ज्वलनशिखा नामक पत्नी थी। उनके विद्यु त्प्रभा नामकी एक पुत्री थी। जब वह आठ वर्ष की बालिका थी तभी किसी रोग से पीड़ित होकर उसकी मा का देहावसान हो गया। तब घर का सारा काम विद्युत्प्रभा के ऊपर आ पड़ा। गायों को चराने, घर का काम करने और पिता की सेवा-टहल करने में वह बहुत थक जाती थी। अतः एक दिन उसने पिता से कह दिया कि वह दूसरी शादी करके पत्नी ले आवे। इससे उसे घर के कामों से छुटकारा तो मिलेगा। किन्तु विद्युत्प्रभा की जो सौतेली मा आयी वह इतनी आलसी और कुटिल थी कि विद्युत्प्रभा को पहले जैसा ही घर-बाहर के कार्यों में अकेले जुटना पड़ता था। इसे वह अपने कर्मों का फल मानती हुई सहन करने लगी।

एक बार विद्युत्प्रभा जब गायों को चरा रही थी तो वहाँ उसने एक सांप रूपी देवता की प्राण-रक्षा की। इससे प्रसन्न होकर उस नागदेवता ने उसे वरदान दिया कि उसके सिर पर एक हरा-भरा कुंज (आराम) सदैव बना रहेगा, जिससे उसे कभी धूप नहीं लगेगी। यह कुंज आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा होता रहता था। एकदिन पाटलीपुत्र के राजा जितशत्रु ने विद्युत्प्रभा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के साहस और कुंज से प्रभावित होकर उसे अपनी पटरानी बना लिया। विद्युत्प्रभा को वह आरामशोभा के नाम से पुकारने लगा। उनके दिन सुख से व्यतीत होने लगे।

इधर आरामशोभा की सौतेली मां के एक पुत्री उत्पन्न हुई। उसके जवान होने पर उस सौतेली मां ने चाहा कि जितशत्रु राजा आरामशोभा के स्थान पर उसकी पुत्री को पटरानी बना ले। अतः उसने गर्भवती आरामशोभा को अपने घर बुलाया और उसके पुत्र के जन्म हो जाने पर आरामशोभा को एक कुँए में डाल दिया और उसके पुत्र के साथ अपनी पुत्री को आरामशोभा बनाकर राजा के पास भिजवा दिया। राजा को नकली आरामशोभा पर शक जरूर हुआ किन्तु पुत्र की प्रसन्नता में उसने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

असली आरामशोभा को अपने पुत्र को देखने की बड़ी इच्छा हुई तो उसने उसी नागदेवता को स्मरण किया। नागदेवता की कृपा से वह पुत्र का दर्शन करने रात्रि में जाने लगी। किन्तु सूर्योदय के पूर्व उसे वापिस लौटना पड़ता था। एक दिन राजा ने असली आरामशोभा को पकड़ लिया और वापिस नहीं आने दिया। तब से उसके सिर से वह कुंज गायब हो गया। किन्तु आरामशोभा को पुनः अपना पद और गौरव प्राप्त हो गया। उसने अपनी सौतेली मां और बहिन को भी क्षमा कर दिया।

एक दिन आरामशोभा राजा के राथ वीरभद्र मुनि के समीप गई। वहाँ उसने अपने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में उनसे पूछा कि उसके ऊपर छत्र के आकार का कुंज क्यों स्थित हुआ और उसे पहले दुःख और बाद में सुख क्यों प्राप्त हुआ ? मुनिराज ने उसके पूर्वजन्म की कथा कही-

चम्पा नगरी में कुलधर नामक वणिक् रहता था। उसके सात पुत्रियों की अच्छे घरों में शादियां हो गयी थीं, किन्तु आठवीं पुत्री पुण्य-रहित होने के कारण अविवाहित थी। तभी उस नगर में नन्दन नामक वणिक्पुत्र आया। कुलधर ने उससे अपनी आठवीं पुत्री का विवाह कर दिया और उसके साथ उसे दक्षिण भारत भेज दिया। किन्तु वह नन्दन वणिक् रास्ते में ही अपनी पत्नी को छोड़कर चला गया।

वह कुलधर की पुत्री भटकती हुई दूसरे नगर में पहुँच कर मणिभद्र सेठ के घर कार्य करने लगी। मणिभद्र उसे पुत्री की भाँति रखने लगा। एक बार जब मणिभद्र सेठ ने अपने यहाँ एक जिन मन्दिर बनवाया तब वह कुलधर की पुत्री वहाँ विनयपूर्वक जिनभक्ति करने लगी। उस मणिभद्र सेठ के एक बगीचा था जो सिंचाई किये जाने पर भी सूखता जा रहा था। इससे वह सेठ बहुत दुःखी था। तब कुलधर की पुत्री ने चार प्रकार के आहारमात्र का व्रत लेकर शासन देवी की पूजा की। उसकी तपस्या के फल से वह सूखा बगीचा फिर से हरा-भरा हो गया। इससे प्रसन्न होकर सेठ ने उस पुत्री को बहुत सा धन पुरस्कार में दिया। उस पुत्री ने उस धन से जिन-प्रतिमा के ऊपर तीन छत्र और मुकुट आदि बनवा दिये तथा मन्दिर में रथ इत्यादि का दान दिया। इस प्रकार धार्मिक कार्य करते हुए वह पुत्री मरणोपरान्त स्वर्ग में देवता हुई। देवता के भोगों को भोगकर वह विद्युत्प्रभा के रुप में उत्पन्न हुई। पूर्व जन्म के बचपन में धर्म न करने के कारण वह विद्युत्प्रभा बचपन में दुःखी हुई, जिनप्रतिमा पर छत्र प्रदान करने से उसे सिर पर कुंज की शोभा प्राप्त हुई और तपश्चरण करने आदि के कारण उसे राज्य-सुख प्राप्त हुआ है।

मुनि के द्वारा इस प्रकार अपना पूर्व- जन्म सुनकर आरामशोभा ने पति के साथ वैराग्य धारण कर तपश्चरण किया एवं सद्गति प्राप्त की।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथा की लोकप्रियता :

आरामशोभा कथा जैन कथाकारों को बहुत प्रिय रही है। अतः प्राकृत, संस्कृत एवं गुजराती भाषाओं में इसके कई संस्करण प्राप्त होते हैं। उनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

प्राकृत संस्करण :

(1) अभी तक प्राप्त जानकारी के अनुसार आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरिकृत मूलशुद्धिप्रकरण पर श्री देवचन्द्रसूरि द्वारा लिखित वृत्ति में सर्वप्रथम तीर्थंकर भक्ति के उदाहरण के रूप में आरामशोभा कथा प्राकृत गद्य एवं पद्य में प्रस्तुत की गयी है।[1] आरामशोभा के पुनः पटरानी पद प्राप्त करने की कथा तक प्राकृत गद्य एवं पद्य का प्रयोग किया गया है एवं उसके बाद पूर्व जन्म की कथा केवल गाथाओं में कही गयी है। कथा इस प्रकार प्रारम्भ होती है-

तत्थ य परिस्समकिलंतनर-नारी हियय व बहुमासं, महामुणिव्व सुसंवरं, कामिणीयणसीसंव ससीमंतयं अत्थि थलासयं नाम महागामं।

कथा के अन्त में कहा गया है-

मणुयत-सुरताइं कमेण सिवसंपयं लहिस्संति।
एयं जिणभत्तीए अणण्ण सरिसं फलं होइ।। 201 ।।

यह मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति ई. सन् 1089-90 में रची गयी थी। अतः आरामशोभाकथा का अब तक ज्ञात यह प्राचीन रूप है।

(2) प्राकृत की 320 गाथाओं में आरामशोभाकथा की रचना किसी अज्ञात कवि ने की है। उसी का परिचय इस लेख में दिया जा रहा है। यह रचना भाषा की दृष्टि से 12 वीं शताब्दी की होनी चाहिए। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है-

झविज्ज भूलभूअं दुवारभूअं पइव्व निहिभूअं।
आहारभायणमिमं सम्मत्तं चरणधमस्स।। 1 ।।
इह सम्मं सम्मत्तं जो समणो सावगो धरइ हिअए।
अपुव्व सो इड्ढिं लहेइं आरामसोहु व्वं।। 4 ।।
कारामसोहवुत्ता कह समत्ता तए सिरी लद्धा।
इअपुट्टो अ जिणंदो आणंदेणं कहइ एअं।। 5 ।।

यहाँ यह स्पष्ट है कि सम्यक्त्व का महत्व प्रतिपादन कर उसके उदाहरण में आरामशोभा की कथा कही गयी है। पाँचवीं गाथा में आणंदेणं शब्द विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्द नामक व्यक्ति द्वारा पूछे जाने पर जिनेन्द्र ने इस कथा को कहा है। यह आनन्द श्रावक है अथवा साधु यह शोध का विषय है।

इस ग्रन्थ के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं है। केवल इतना कहा गया है कि 'हे भव्य जीव आरामशोभा की तरह आप भी सम्यक्त्व में अच्छी तरह प्रयत्न करें, जिससे कि शीघ्र ही शिव-सुख को प्राप्त करें:-'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आरामसाहिआ विव इअ सम्मं दंसणम्मि भो भव्वा।
कुणह पयत्तं तुब्भे जह अइरा लहह सिवसुक्खं।। 320।।
।। श्री शुभं भवतु ।।

मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति की आरामसोहाकहा एवं अज्ञातकर्तृक कथा की गाथाओं में कोई समानता नहीं है। सूक्ष्म अध्ययन करने पर भाषा की कुछ समानता मिल सकती है। कथाअंश लगभग एक जैसा है। कुछ स्थान के नामों में भी अन्तर है।

इस प्राकृत आरामशोभाकथा की अब तक निम्न पाण्डुलिपियों का पता चला है[2]-

1. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मंदिर, अहमदाबाद, (प्रस्तुत पाण्डुलिपि) नं. 1605
2. विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञान-मंदिर, वेलनगंज, आगरा, नं. 1601
3. देला उपासरा भण्डार, अहमदाबाद, नं. 134
4. देला उपासरा भण्डार, अहमदाबाद, नं. 100
5. विमलगच्छ उपासरा ग्रन्थ-भण्डार, फलूसापोल, अहमदाबाद, नं. 627, 852
6. विमलगच्छ उपासरा ग्रन्थ-भण्डार, हजपटेलपोल, अहमदाबाद, डब्बा नं. 15, पोथी नं. 5
7. भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1887-91 का कलेक्शल, नं. 1293
8. भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना पीटर्सन रिपोर्ट 1, नं. 239
9. लीबंडी जैन ग्रन्थ-भण्डार, नं. 681

इन पाण्डुलिपियों की प्राप्ति एवं उनके अवलोकन से पता चलेगा कि इनमें कोई प्रशस्ति आदि है अथवा नहीं। सम्पादन-कार्य के लिए भी इनसे मदद मिल सकती है।

इस ग्रन्थ में कुछ उद्धरणों का प्रयोग हुआ है। अन्य ग्रन्थों में उनकी खोज करने से इस ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण हो सकता है। कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं-

(क) दंसण-भट्ठो भट्ठो दंसण भटठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरण-रहिआ दंसणरहिआ न सिज्झंति ।।3।।[3]

(ख) बालस्स माय-मरणं भज्जा-मरणं च जोव्वणारंभे।
थेरस्स पुत्त-मरणं तिन्नि वि गुरुआइ दुक्खाइं ।।12।।

(ग) पुव्वभवे जं कम्मं सुहासुहं जेण जेण भावेण।
जीवेण कयं तं चिअं परिणमई तम्मि कालम्मि ।।13।।

(घ) विहलं जो अवलबई आवइपडिअं व जो समुद्धरइ।
सरणागयं च रक्खइ तिहिं तिसु अलंकिआ पुहवी ।।39।।

(ङ) धम्मेण सुह-संपया सुभगया नीरोगया आवया-चतं।
दीहरभाउअं इह भवे जम्मो सुरम्मे कुले ।।223।।

(च) दिव्वंस्वमउव्वं जुव्वणभरो सती सरीरे जणे।
किती होइ सुधम्मओ परभवे सग्गापवग्गस्सिरी ।।224।।

(3) आरामशोभाकथा की तीसरी रचना प्राकृत गद्य में है। हरिभद्रसूरिकृत 'सम्यक्त्वसप्तति' पर संघतिलक ने ई. सन् 1365 में प्राकृत में वृत्ति लिखी है।[4] इस वृत्ति में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आरामशोभा की जो कथा दी गयी है उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है-

इहेव जम्बूरुक्खालंकियदीवमज्झट्ठिए अक्खंडछक्खंडमंडिए बहुविहसुहनिवहनिवासे भारहे वासे असेसलच्छि-संनिवेसो अत्थि-कुसट्टदेसो।

इस पूरी रचना में 30 प्राकृत एवं संस्कृत के पद्यों का भी प्रयोग हुआ है। अन्त में कहा गया है-[5]

आरामसोहाइ चरित्तमेयं निसामिऊणं सवणाभियामं।
कुणेह देवाण गुरूणवेया-वच्चं सया जेण लहेइ सुक्खं।।

इस कथा को मूल रूप में डा. राजाराम जैन ने हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया, है यद्यपि विभिन्न प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया जाना शेष है। ला.द. संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद, में इस प्राकृत (गद्य) आरामसोहाकथा की 2 प्रतियाँ प्राप्त हैं - संख्या 3260 एवं 2560।

संस्कृत संस्करण :

(4) संस्कृत में जिनहर्षसूरि (ई. सन् 1481), मलयहंसगणि एवं माणिक्यसुन्दरगणि ने आरामशोभाकथा लिखी है। यह ज्ञात नहीं हो सका है कि इसका संस्कृत संस्करण प्रकाशित है या नहीं। इनकी पाण्डुलिपियाँ विभिन्न ग्रन्थ-भंडारों में प्राप्त हैं।[6] संस्कृत के जैन कथा-ग्रन्थों में आरामशोभाकथा का उल्लेख किया गया है।[7]

गुजराती संस्करण :

(5) आरामशोभाकथा गुजराती में भी लिखी गयी है। गुजराती के आरामशोभारास की भूमिका में सम्पादकों ने इस कथा की निम्नांकित गुजराती रजनाओं का उल्लेख किया है:-[8]

(क) आरामशोभारास (राजकीर्ति), ई. सन् 1479
(ख) आरामशोभा चौपाई (विनय समुद्र), ई. सन् 1527
(ग) आरामशोभाचरित (पुंज ऋषि), ई. सं. 1596
(घ) आरामशोभा चौपाई (समयप्रमोद), ई. सं. 1610 के लगभग
(ड) आरामशोभा चौपाई (राजसिंह), ई. सं. 1631
(च) आरामशोभा चौपाई (दयासार), ई. सं. 1648
(छ) आरामशोभारास (जिनहर्ष), ई. सं. 1660

इस तरह ज्ञात होता है कि आरामशोभाकथा जन-जीवन में बहुत लोकप्रिय रही है। जिनभक्ति के लिये मध्यकाल में यह प्रमुख दृष्टांत रहा है। कथा की लौकिकता के कारण इसे अधिक प्रसिद्धि मिली है।

हिन्दी संस्करण :

(6) आरामशोभाकथा को किसी हिन्दी लेखक ने स्वतन्त्र से नहीं लिखा है। किन्तु प्राचीन कथा के आधार पर हिन्दी में उसका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित जैन कथा भाग 66 में आरामशोभाकथा प्रस्तुत की गयी है।[9] अमरचित्र कथा सीरिज में भी 'जादुई कुंज' के नाम से इस कथा को प्रस्तुत किया गया है।[10]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथा के मानक रूप एवं अभिप्राय :

आरामशोभा कथा एक लोककथा है। अतः इसमें लोकतत्वों की भरमार है। इस कथा के मानकरूप इस प्रकार हैं:-

1. अकेली बालिका पर घर के कार्यों का भार।
2. सर्प का मनुष्य की वाणी में बोलना।
3. कृतज्ञ नागकुमार द्वारा साहस के कार्य के लिये वरदान देना।
4. छत्र के रूप में कुंज का आश्चर्य।
5. राजा द्वारा गुणी, गरीब कन्या से विवाह।
6. सौतेली माता द्वारा सौतेली पुत्री की मारने का प्रयत्न।
7. नागकुमार द्वारा अदृश्य रूप से सहायता।
8. कुंए में ढकेलना, किन्तु वहाँ पर भी रक्षा।
9. पुत्र-जन्म पर मां को परिवर्तन कर देना।
10. असली पत्नी को राजा के द्वारा बाद में पहिचान लेना।
11. पुत्र-दर्शन के लिये देवता की समय-मर्यादा की शर्त।
12. शर्त तोड़ने वर देवता के वरदान का लुप्त होना।
13. नायिका द्वारा सौतेली मां एवं बहिन को क्षमा प्रदान करना।
14. मुनि से पूर्व-जन्म का वृतान्त-श्रवण।
15. पति द्वारा जंगल में छोड़कर चले जाना।
16. धर्मपिता सेठ द्वारा आश्रय देना।
17. अपने अतिशय गुणों से धर्मपिता को संकट से बचाना।
18. जिनमंदिर-निर्माण और जिनपूजा के फलस्वरूप सद्गति।
19. कर्मफल श्रृंखला।
20. वर्तमान जीवन की घटनाओं का तालमेल पूर्वजन्म की घटनाओं से बैठाना।

इन मानकरूपों को देखने से पता चलता है कि 1-13 तक के मानकरूप एक लौकिक कथा के हैं। उनका जैनधर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। और 14-20 तक के मानकरूप किसी भी धर्म के साथ जोड़े जा सकते हैं। वस्तुतः आरामशोभाकथा में दो कथाओं को एक साथ मिला दिया गया है।

परवर्ती कथाओं पर प्रभाव :

आरामशोभाकथा का मूल अभिप्राय 'माता-विहीन पुत्री और सौतेली माता का स्वार्थ' है। इस अभिप्राय को पुरी तरह व्यक्त करने के लिये कई कथाकारों ने लेखनी चलाई है। सन् 1150 में अपभ्रंश कवि उदयचन्द्र ने 'सुगन्धदशमीकथा' लिखी है। इस कथा का उत्तरभाग आरामशोभाकथा से मिलता-जुलता है। डा. हीरालाल जैन ने इसकी कुछ समान विशेषताओं की ओर संकेत किया है।[11] सौतेली लड़की की अवहेलना एवं अपनी सगी पुत्री को उसका पद दिलाने की चाह दोनों में समान है, यद्यपि तरीकों में अन्तर है। सौतेली माता द्वारा सौतेली पुत्री की अवमानना करने की घटना सुगंधदशमी कथा के संस्कृत (सन् 1472), गुजराती (1450),

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मराठी (18 वीं शती) एवं हिन्दी (1750) संस्करणों में भी प्राप्त होती है।

सौतेली माता का अपनी पुत्री को रानी बनाने के निष्फल प्रयास एवं सौतेली पुत्री को सताने की घटनाएं विश्वसाहित्य में भी प्राप्त होती हैं। डा. जैन ने दो कथाओं का उल्लेख किया है। फ्रेंच कहानी 'सिन्ड्रेला' में उसकी सौतेली मा उसे उत्सव मे नहीं जाने देती और अपनी पुत्रियों को सजाकर वहाँ भेजती है। किन्तु राजकुमार अन्ततः सिन्ड्रेला को ही अपनी रानी बनाता है।[12] जर्मन कहानी 'अश्पुटेल' में जो सौतेली लड़की है वह बिल्कुल आरामशोभा से मिलती-जुलती है। हैजल वृक्ष आरामशोभा के जादुई कुंज की तरह मददगार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्ततः 'अश्पुटेल' को राजकुमार अपनी रानी बना लेता है।[13] इस तरह अभी आरामशोभा कथा की भारतीय एवं विश्वसाहित्य की कथाओं के साथ तुलना करने से और भी नये तथ्य सामने आ सकते हैं।[14]

सन्दर्भ

1. भोजक, अमृतलाल (सं.), मूलशुद्धिप्रकरण (प्रथम भाग), अहमदाबाद, 1971, पृ. 22-34।
2. वेलणकर, एच. डी., जिनरत्नकोश, पूना, 1944, पृ.33-34।
3. यह गाथा दर्शनपाहुड (कुन्दकुन्द) एवं भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णक में यथावत् उपलब्ध है।
4. सम्यक्त्वसप्तति (संघतिलककृत वृत्तिसहित), सं. ललितविजय मुनि, 1916।
5. मुनि यशोभद्र (सं.), आरामसोहाकहा, नेमि-विज्ञान ग्रन्थरत्न (3), सूरियपुर, सन् 1940
6. (क) जैन ग्रन्थ-भण्डार, लींबडी, पोथी नं. 701।
   (ख) श्री जैन संघ भण्डार, पाटण, डब्बा नं. 6, पोथी नं. 9।
7. (क) देसाई, जैन साहित्यनो इतिहास, 1933, पृ. 471।
   (ख) चौधरी, जो. सी., जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 6, पृ. 417।
8. कथा मंजूषा (भाग 7)- आरामशोभारास, (सं.) जयत कोठारी एवं कीर्तिका जोशी, अहमदाबाद, 1983।
9. श्री पुष्कर मुनि, जैन कथा, भाग 66, उदयपुर, 1976।
10. 'जादुई कुंज' मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' की जैन कहानियाँ भाग 12 में प्रकाशित कथा पर आधारित है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी Jain Stories में प्रकाशित है।
11. जैन, हीरालाल, सुगंधदशमीकथा, वाराणसी, 1944, भूमिका, पृ. 18।
12. द स्लीपिंग ब्युटी एण्ड अदर फेयरी टेल्स फ्राम द ओल्ड फेन्च (रिटोल्ड बाइ ए. टी. विलयर-कोउच)।
13. जेकब लुडविक कार्लग्रिम, 'दि किडर उण्ड हाउसमारचेन,' (अंग्रेजी अनुवाद ग्रिम्स टेल्स)।
14. सम्पादन एवं अनुवाद के साथ लेखक द्वारा शीघ्र प्रकाश्य।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नवम

कथा णेमिणाहचरिउ की

जैन साहित्य में नेमिनाथ तीर्थंकर के जीवन और साधना को विषय बनाकर कई कवियों ने चरित ग्रन्थ लिखे हैं। सर्वप्रथम आगम एवं पुराण ग्रन्थों में नेमिनाथ के चरित का वर्णन प्राप्त होता है।[1] आठवीं शताब्दि में अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू ने इस कथानक को लेकर 'रिट्ठणेमिचरिउ' के नाम से स्वतन्त्र रचना प्रस्तुत की।[2] लगभग 12 वीं शताब्दि में नेमिनाथ के जीवन पर प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के कवियों ने विभिन्न रचनाएं लिखी हैं।[3] बारहवीं शताब्दि के अपभ्रंश कवि लक्ष्मणदेव (लखमदेव) द्वारा रचित णेमिणाहचरिउ एक महत्त्वपूर्ण कृति है, जो अभी तक अप्रकाशित है।

णेमिणाहचरिउ (लखमदेव) की इस रचना की एक पाण्डुलिपि हमने ऐलक पन्नालाल जैन सरस्वती भवन, उज्जैन से प्राप्त की है।[4] अपभ्रंश के विद्वानों के लिए यह प्रति अज्ञात थी। किसी ने इसका विवरण या सूचना आदि अपने ग्रन्थों में नहीं दी है। उज्जैन की यह प्रति वि.सं 1510 में लिखी गयी किसी मूल प्रति की प्रतिलिपि है। इस प्रति में कुल 29 पत्र हैं। पं. परमानन्द शास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में यह तो संकेत किया है कि णेमिणाहचरिउ की सबसे पुरानी प्रति वि. सं. 1510 की लिखी हुई प्राप्त हुई है।[5] किन्तु यह मूल प्रति कहाँ है, अथवा किसे प्राप्त हुई है, इसका कोई उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। ग्रन्थ का परिचय उन्होंने पंचायती दि. जैन मन्दिर, दिल्ली के भण्डार में उपलब्ध प्रति के आधार पर दिया है।[6] अपभ्रंश के खोजी विद्वान् डॉ देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने भी अपनी सूची में इस वि.सं. 1510 की प्रति का कोई विवरण नहीं दिया है। हमें उज्जैन में इस प्रति की प्रतिलिपि तो उपलब्ध हो गयी, किन्तु मूलप्रति अभी भी अन्वेषणीय है। इसे इस ग्रन्थ की प्रथम प्रति माना जा सकता है।

इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति पंचायती दि.जैन मन्दिर दिल्ली में उपलब्ध है, जो. वि. सं. 1522 की लिखी हुई है। अगहन सुदी 10, भौमवार को यह प्रति लिखी गयी थी। इस प्रति में कुल 52 पत्र हैं। 45 वां पत्र उपलब्ध नहीं है। पत्र की साइज 10 1/4 X 4/ 1/2 इंच है। इस प्रति के अंतिम भाग में ग्रन्थकार की प्रशस्ति दी हुई है। उससे ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ आषाढ की तेरस को आरम्भ किया गया था एवं चैत की तेरस को इसकी रचना पूर्ण हो गयी थी[7]

आरंभिउ आसाढहिं तेरसि, भउ परिपुण्ण चइतिय तेरसि।

- संधि 4, घत्ता 2

किन्तु इस प्रति में रचनाकाल नहीं दिया हुआ है।

इस णेमिणाहचरिउ की तीन पाण्डुलिपियां सरस्वती भवन नागौर के ग्रन्थ-भण्डार में उपलब्ध हैं। इनमें से दो प्रतियों का परिचय डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने दिया है, जिन्हें यहां इस ग्रन्थ की क्रमशः तृतीय एवं चतुर्थ प्रति कहा जा सकता है।[8]

ग्रन्थ की यह तृतीय प्रति वि.सं. 1529 में श्रावण कृष्णा 11 को लिखी गयी है। इसमें 58 पन्ने हैं, जिनकी साइज 10 1/2X4 3/4 इंच है। डॉ. पी.सी. जैन ने इस प्रति का लेखनकाल

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सं. 1559 दिया है।[9]

चतुर्थ प्रति में कुल 65 पन्ने हैं, जिनकी साइज 9x4 1/2 इंच है। इसका लेखनकाल सं.1519 वैशाख कृष्णा 13, रविवार है।

इस ग्रन्थ की एक प्रति और सरस्वती भवन, नागौर में उपलब्ध है। इसमें 54 पन्ने हैं, जिनकी साइज 10 3/4 X 4 3/4 इंच है। इस प्रति में लेखनकाल भी नहीं दिया हुआ है। प्रति की अवस्था भी प्रति जीर्ण-शीर्ण है। इसे इस णेमिणाह- चरिउ की पांचवी प्रति कहा जा सकता है।

णेमिणाहचरिउ (लखमदेव) की इन पांचों प्रतियों का एक साथ मिलान करने पर ग्रन्थ के संशोधित पाठ को तैयार किया जा सकता है। इस अध्ययन से ग्रन्थकार एवं रचनाकाल के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश पड़ सकता है। हमने उज्जैन की पाण्डुलिपि को फिलहाल आद्योपान्त पढ़ा है। अतः यहाँ उसी का विशेष परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

उज्जैन भण्डार से प्राप्त इस प्रति में कुल 29 पन्ने हैं, जो दोनों ओर लिखे हुए हैं। इनकी साइज 12 1/2 X 6 3/4 इंच है। एक पृष्ठ पर 14 पंक्तियां हैं एवं प्रत्येक पंक्ति में 50 अक्षर हैं।प्रति स्पष्ट एवं प्रायः शुद्ध लिखी हुई है। सं. 1510 मगषिर वदी 10 को लिखी गयी मूल प्रति से यह नयी प्रति लिपि सं. 1983 में फागुन शुक्ला द्वितीया को की गयी है। सम्भवतः इस प्रति के लेखनकर्ता गोराणिया गोत्र के ब्र.नरसिंह हैं, जो मुनि मदनकीर्ति के शिष्य एवं पद्मनंदि के प्रशिष्य थे।[10]

इस प्रति का आदि एवं अन्त भाग इस प्रकार है-

आदिभाग :

ओं नमः ।। सिद्धेभ्यः ।। अथ श्री नेमिनाथ चरित प्रारम्भ्यते श्री वीतरागायनमः ।।

विसरह-धुर-धारउ विस्सवियारउ विसम विसय विसकिउ विलउ।.
पणममि वसु गुणहरू वसुधरु तियवरु वारियलंछणु गुणणिलउ।।

कड़वक 1

जय रिसह रहिय-रय-रय सरूव, जय अजिय णाय-णय दिव्वतूव।.
जय संभव भव-काणण कुयारि, जय अंहिणंदण गय गिह कुणारि।।

घत्ता

ए जिणवर गुणसारा, गइणइतारा, देहि बुल्कि जइ विमल महु।
ता रयमि चरियवरू कोउहलहरु णेमिणाहरायमइ सहु।। 1।।

अन्तभाग :

णंदउ एहू गंथु चिरुकालें, संवोहउ भव्वयणहं जालइं।[11]
णंदउ धम्मसत्थु परमेट्ठिहिं, भंगलु देउ णेमिजिणु गोविहिं।
णंदउ णरवइ जण-संजुत्तउ, जणु होज्जउ वरधम्मासत्तउ।
पच्चउ मेइणि बहु फलदाइणि, णासइ दुम्मउ जण असुहावणि।
पउरवा[illegible] कमलदिवायरु, विणयचेतु संघह मय सायरु।
धणकण [illegible]त्त-अत्थ संपुण्णउ, आइस रावउ रूव-रवण्णउ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तेण वि कयउ गंथ अकसायहु, बंधव अम्मएव सुसहावइ।
कम्मक्खय-णिमित्तु आहासिउ, अमुणंतेण पमाणु पयासिउ।
जइ हीणाहिउ किउ वाएसरि, णाणदेवि तं रवमि परमेसरि।
लक्खण छंदहीणु जं भासिउ, तं बुहयण सोहेवि पयासिउ।
आरंभिउ आसाढ़ सिय तेरसि, भउ परिपुण्णु घइतहि तेरसि।
जो पढइ सुणइ जो लिहइ लिहावइ मणवंछिउ सोक्खु सो पावइ।
घत्ता छूटा है[12]

इय णेमिणाह चरिए अबुहकय-रयण-सुअ लखमएणेण विरइए भव्वयण-जण-मणाणदे णेमि-मिणिहायागमेणो णाम चउत्थो परिच्छेओ समत्तोः संधि 4

यह णेमिणाहचरिउ कुल चार संधियों (परिच्छेदों) का ग्रन्थ है, जिनमें कुल 82 कड़वक हैं। प्रथम संधि के 19 कड़वकों में तीर्थंकर वन्दना,सरस्वती वन्दना, मालवदेश एवं कवि परिचय, श्रेणिक की प्रार्थना पर गणधर द्वारा नेमिनाथ के चरित का वर्णन, नेमिकुमार का जन्म एवं इन्द्रादि द्वारा जन्माभिषेक का वर्णन है। इस संधि में दुर्जन एवं सज्जन-वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है कि मैं अधिक वर्णन क्या करूँ क्योंकि दुर्जनों के स्वभाव से डरता हूँ। ईर्ष्या करना उनका स्वभाव है। जैसे, उल्लू सूर्य के प्रताप को सहन नहीं करता उसी प्रकार दुर्जन लोगों को अनुराग नहीं करता। उनके इस स्वभाव को जानना चाहिए कि वे दूसरों के गुण को छोड़कर उनके दोषों को ही ग्रहण करते हैं-

जिह कोसिउ ण सहइ रविपयाउ, तिह खलु ण करेइ जणाणुराउ।.
जाणेव्वउ इय दुज्जणु-सहाउ, गुण मेल्लेवि दोसु गहेइ पाउ।।
- संधि 1, कड़वक 3

ग्रन्थ की दूसरी संधि में णेमिकुमार की बाललीला, शिक्षा-ग्रहण, युवावस्था, वसन्तवर्णन, जलक्रीडा, विवाह-निश्चय, राजमती का सौन्दर्य-वर्णन, बारात-प्रस्थान, पशु-बन्धन से वैराग्य धारण एवं राजमति और नेमिनाथ के बीच प्रश्नोत्तर आदि का वर्णन 23 कड़वकों में किया गया है। नेमिनाथ जब पशुओं के वध की बात को सुनकर वैराग्य धारण कर तपश्चर्या के लिए चले गये तब उनके विरह में दुःखी होकर राजमती सोचने लगी कि क्या मैंने पूर्वजन्म में फलों से युक्त वृक्ष को तोड़ दिया था जिसके कारण से भाग्य मुझे यह दुःख दे रहा है ? क्या पूर्व जन्म में मैंने दूसरे के द्रव्य का हरण किया था जो मेरे इस प्रतियतम रूपी द्रव्य को मुझ से छीन लिया गया-

कि परभवि भग्गउ सहल रुक्खु, तं आयण्णिवि दिण्णउ देव दुक्खु।.
कि परभवि हरयउ परहे दव्वु, तं दइयद-दुहु दावियउं सव्वु।।
- संधि 2, कड़वक 17

तीसरी संधि के कड़वक 1 से 10 तक में राजमती की सहेली मदनसिरी राजमती की ओट में नेमिकुमार से बातचीत करती है एवं तप को निरर्थक सिद्ध करने के लिए कई उक्तियां देती है। इन सबका जवाब नेमिकुमार देते हैं और इंद्रियसुख की असारता को सिद्ध करते हैं। मदनश्री कहती है कि हे कुमार आपको सब सुख प्राप्त हैं तो आप उन्हें छोड़कर तप को जा रहे हैं जबकि संसार के लोग इन्हीं सुखों की प्राप्ति के लिए जीवन भर प्रयत्न करते रहते हैं; यह संसार भी विचित्र है। जिस मनुष्य के घर में अन्न भरा है, उसे भोजन के प्रति अरुचि है और जिसको भोजन के प्रति आसक्ति है, उसके पास अनाज नहीं है। जिस व्यक्ति में दान का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्साह है, उसके पास धन नहीं है और जिसके पास धन है उसे अति लोभ है, अतः वह दान नहीं कर पाता । जिसमें काम के प्रति राग है, उसके भार्या नहीं है और जिसके भार्या है, उसका काम शान्त हो गया है-

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोयसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाणु छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु अइ लोह अत्थि।
जसु मयणराउ तसु णत्थि भाम, जसु भाम तासु उच्छउ ण काम।
संधि 3 कड़वक 2

चतुर्थ संधि में नेमिकुमार की तपस्या का वर्णन है। समवसरण रचना के वर्णन के बाद जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पांच अणुव्रतों, सामायिक, चार प्रकार के दान, समाधिमरण, अनित्य आदि भावनाओं एवं धर्म के महत्व को इस संधि के 20 कड़वकों में प्रतिपादित किया गया है। धर्म की महिमा गाते हुए कवि ने उक्तंच कहकर संस्कृत का निम्न पद्य उद्धृत किया है-

भक्ति तीर्थंकरेगुरो जिनमते संघे च हिंसानृतं-
स्तेयव्रह्म-परिग्रह वरु परमं क्रोधाद्यरीणां जयं।
सौजन्यं गुणसंगमिन्द्रियदमं दानं तपो भावनां
वैराग्यं च कुरुथ निवृत्तिपदे यद्यस्ति गंतुं मनः ।। 1

कवि-परिचय :

णेमिणाहचरिउ (उज्जैन प्रति) की प्रथम, संधि के दूसरे कड़वक में एवं चतुर्थ संधि के अन्त में जो प्रशस्ति दी गयी है, उससे कवि लक्षलणदेव के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। प्रत्येक संधि के अन्त में दी गयी पुष्पिका में कहा गया है कि अबुधकवि रत्न-सुत लक्ष्मण अथवा लखमदेव के द्वारा रचित भव्यजनों के मन को आनन्द देने वाले इस णेमिणाह चरित में नेमिकुमार के जन्म नामक प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ।[13] इस पुष्पिका में 'अबुधकवि' विशेषण चिन्तनीय है। 'रयण-सुअ' पद से स्पष्ट है कि कवि के पिता का नाम रतन (देव) था। रतनदेव पर-नारियों के लिए सहोदर एवं निरभिमानी, धैर्यशाली सज्जन व्यक्ति थे।[14] कवि की माता का नाम सम्भवतः लखमाणा था, जिनका पुत्र लखमदेव विषयों से विरक्त रहता था।[15]

कवि लखमदेव महिषपुर एवं पुरवाडवंश का तिलक था। वह रात-दिन ज्ञान और मुनियों की वाणी में लीन रहता था।[16] प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कवि का समाज में अच्छा आदर था। वह धन-धान्य, पुत्र आदि से समृद्ध था और रूप से भी सुन्दर था।[17] कवि लखमदेव को उनकी इस काव्य-रचना में उनके बान्धव अंबदेव ने अच्छी सहायता की थी-

तेण वि कयाउ गंथु अकसायहु।
बंधव अंबएव सुसहायहु।।

इस ग्रन्थ की रचना में कवि लखमदेव का उद्देश्य अपना कवित्व प्रकट करना नहीं था, अपितु उन्होंने अपने कर्मों के क्षय के लिए इस चरित को रचना था।[18] इसमें उन्होंने प्रमाणिक चरित एवं सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र काव्य-गुणों का भी दिग्दर्शन होता है। फिर भी कवि अपने को अल्पज्ञ ही मानता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही वह अपनी विनयशीलता प्रकट कर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

देता है।[19] और अन्त में ज्ञानदेवी वागेश्वरी से कवि क्षमा मांग लेता है कि जो कुछ ग्रन्थ में हीनाधिक कहा गया हो, उसे वह क्षमा करे-

जं हीणाहिउ किउ वाएसरि, णाणदेवि तं खमइ परमेसरि।

यह ग्रन्थ काव्य की अपेक्षा नैतिक उपदेश का ग्रन्थ है। नेमिकुमार जब तपस्या करने लगते हैं तब राजमती एवं उसकी सखियों को इंन्द्रिय-सुख की असारता समझाते हुए कहते हैं कि जो इन्द्रिय-सुख को ही सब कुछ मानता है वह गवांर राख के लिए गोशीर चंदन को जलाता है, आसन के लिए भारी शिला को कंधे पर ढोता है, माणिक्य को देकर गुजाफल ग्रहण करता है, क्षणिक लाभ के लिए विष-फल का भोजन करता है, कौड़ी देने पर अपने करोड़ों के द्रव्य को बेच देता है, शीतलता पाने के लिए अग्नि की ज्वाला में प्रवेश करता है और श्रेष्ठ सवारी को छोड़कर गधे पर चढ़ता है।[20]

ग्रन्थ में अन्यत्र भी प्रेरणादायक सुभाषितों एवं सूक्तियों को कवि ने प्रस्तुत किया है। यथा-

किं जीयइं धम्म विवज्जिएण = धर्मरहित जीने से क्या प्रयोजन ?

सयमेव घसंसिय किं गुणेण = स्वयं की प्रशंसा में कौन सा गुण है ?

इस णेमिणाहचरिउ की भाषा अपभ्रंश का विकसित रूप है। इसमें क्षेत्रीय भाषओं के विकास के संकेत उपलब्ध हैं। अनावश्यक रूप से इस ग्रन्थ की भाषा में संस्कृत के समासबहुल शब्दों का प्रयोग देखने को नहीं मिलता है। देशी शब्दों का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में कम हुआ है। अपभ्रंश भाषा के प्रमुख छंदों-हेला, दुवई, वस्तु बंध, घत्ता, गाहा आदि का प्रयोग कवि ने किया है। अपभ्रंश में 5-6 कवियों ने णेमिणाह चरिउ नामक ग्रन्थों की रचना की है। उन सब की कथावस्तु आदि के तुलनात्मक अध्ययन के लिए लखमदेव का यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न प्रतियों के आधार पर इस पाण्डुलिपि का सम्पादन हमने प्रारम्भ किया है। संपादित संस्करण तैयार होने पर ग्रन्थ, ग्रन्थकार एवं मध्ययुगीन संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ नया प्रकाश पड़ सकता है।

सन्दर्भ

1. देवेन्द्र मुनि शास्त्री "भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण-एक अनुशीलन, उदयपुर, 1971
2. जैन देवेन्द्र कुमार, रिटठणेमिचरिउ (प्रथम भाग), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1985
3. चौधरी, गुलबचन्द्र, जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 6, पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम, वाराणसी, पृ. 115-117
4. इस प्रति की प्राप्ति के लिए हम विद्वत्वर पं. दयाचन्द जी शास्त्री, उज्जैन के आभारी हैं।
5. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (द्वितीय भाग), दिल्ली 1963, प्रस्तावना पृ. 89-90
6. वही, प्रशस्ति संख्या 39, पृ. 56-57
7. उज्जैन की प्रति में 'आसाढ-सियतेरसि' पाठ है, जिससे स्पष्ट है कि आषाढ़ तेरस को यह ग्रन्थ प्रारम्भ हुआ था।
8. शास्त्री, देवेन्द्र कुमार, अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियाँ, दिल्ली, 1972, पृ. 138
9. जैन, पी.सी., ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ मेनुस्क्रप्टस् इन 5 भट्टारकीय ग्रन्थ-भण्डार नागौर जयपुर 1985 पृ. 130
10. श्री पद्मनंदी सिष्यमुनि मदनकीर्तितत्सिष्य व्र. नरसिंह गोराणिया गोत्रे ---------ग्रन्थ के अन्त में अंकित।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

11. दिल्ली की प्रति में इस मगल वाक्य के स्थान पर कवि परिचय का कड़वक 21 एवं घत्ता 21 दिया हुआ है, जो इस उज्जैन प्रति में ग्रन्थ के प्रारम्भ में कड़वक 2 में दे दिया गया है।
12. यह घत्ता दिल्ली प्रति में इस प्रकार है-
    जं हीणाहिउ मत्त-विहूणिउ साहिउ गयउ अयाणि।
    तं मज्झु खमिव्वउ लहु दय किज्जउ साहु लोउग्गमणि ।।22।।
13. इति णेमिणाह चरिए अबुहकइ रयणसुअ लक्खमणेण विरइए भव्वयणमप्याणदे णेमिकुमार संभो नाम पढमो परिच्छेओ समत्तो।
14. तहिं णिवसइ रयणु गरुह भव्वु,परणारिसहोयरु गलियगव्वु।
15. लखमाणा मइं तहिं तणउ पुत्तु, लखमएव णामें रिसायहिंविरत्तु।
16. संधि 1 कड़वक 2 की प्रशस्ति।
17. संधि 4 कड़वक 22 की प्रशस्ति।
18. कम्मक्खइ णिमित्तु आहासिउ,अमुणतिण पमाणु पयासिउ।

संधि 4, कड़वक 22

19. संधि 1, कड़वक 3
20. छारहो कज्जइं गोसीर दहइ, आसणा णिमित्त सिल-कंधि वहइ।
    गुंजाहलु लइ माणिक्कु दइ, आयहो णिमित्तु विसहलु असेइ।
    बिक्किणइ कोडि कअडिय अयाणु, पइसइ हविचारह सीय-ठाणु।
    आरुहइ खरहो मिल्लिवि तुहारु, जो इंदिय-सुख माणइं गमारु।।

- संधि 3, कड़वक 9

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दशम

प्राकृत साहित्य में बाहुबली-कथा

जैन साहित्य में भगवान् ऋषभदेव के जीवन-वर्णन के प्रसंग में सम्राट् भारत एवं बाहुबली के जीवन के अनेक प्रसंग वर्णित हैं। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि कई भाषाओं में इन महापुरुषों के चरित्रों का वर्णन प्राप्त होता है। ऋषभदेव का जीवनवृत्त स्वतन्त्र रूप से प्राकृत में लिखा गया है। आदिनाहचरियं, रिसभदेवचरियं आदि प्राकृत ग्रन्थों में स्वतन्त्र रूप से एवं चौपन्नमहापुरिसचरियं, वसुदेव-हिण्डी, पउमचरियं, जम्बूदीवपण्णत्ति आदि प्राकृत ग्रन्थों में अन्य व्यकतियों के चरित्रों के साथ ऋषभदेव के जीवन का वर्णन प्राप्त होता है। भरत एवं बाहुबली ऋषभदेव के प्रमुख पुत्र थे। अतः प्रसंगवश उनके जीवन की कथा भी इन प्राकृत ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

मूलकथा प्राकृत में :

प्राकृत आगम साहित्य के कुछ ग्रन्थों एवं व्याख्यासाहित्य के कुछ ग्रन्थों में भी बाहुबली के उल्लेख प्राप्त होते है। कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, उत्तराध्ययनसूत्र की टीका आदि में बाहुबली के जीवन के कई प्रसंग वर्णित हैं। किन्तु यह आश्चर्य है कि बाहुबली का चरित्र इतना प्रसिद्ध और प्रभावशाली होते हुए भी प्राकृत के किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का विषय नहीं बना। ऋषभदेव तथा भरत के जीवन के साथ बाहुबली की कथा इतनी जुड़ी हुई थी कि प्राकृत के किसी ग्रन्थकार का ध्यान उन पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने पर नहीं गया। किन्तु अन्यान्य प्रसंगों में, प्राकृत में बाहुबली की कथा अवश्य लिखी जाती रही है। बाहुबली की कथा का मूल स्रोत प्राकृत में लिखा गया कोई ग्रन्थ रहा है, जो आज ज्ञात नहीं है। आवश्यक-निर्युक्ति की टीका संस्कृत में है, किन्तु उसमें जब बाहुबली की कथा का प्रसंग आता है तो उसे प्राकृत में लिखा गया है जो इस कथा के प्राकृत मूल को स्पष्ट करता है। श्री शुभशीलगणि द्वारा विरचित भरतेश्वर-बाहुबलीवृत्ति नामक ग्रन्थ प्राकृत में उपलब्ध है, जिसमें बाहुबली की कथा वर्णित है। अतः प्राकृत आगम-साहित्य से लेकर प्राकृत के स्वतन्त्र कथाग्रन्थों तक बाहुबली की कथा निरन्तर विकसित होती रही है। इस कथा के उत्स एवं विकास पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन कये जाने की आवश्यकता है। पं. दलसुख भाई मालवणिया ने अपने एक निबन्ध में इस बात पर विशेष बल दिया है।[1]

कथा का प्राचीन रूप :

प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थों में बाहुबली की कथा बहुत संक्षिप्त है। चौथी शताब्दी के प्राकृत ग्रन्थ वसुदेवहिण्डी में यह कथा इस प्रकार है:-

बाहुबली, भगवान् ऋषभदेव के पुत्र तथा सम्राट् भरत के छोटे भाई थे। वे ऋषभदेव की दूसरी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्नी सुनन्दा के पुत्र थे। उनकी सहोदरा बहिन का नाम सुन्दरी था। पिता ऋषभ ने अपनी अन्य सन्तानों की तरह बाहुबली को भी शिक्षा प्रदान की। उन्हें विशेषरूप से चित्रकला एवं ज्योतिषविद्या का ज्ञान कराया। ऋषभदेव ने जब अपने पुत्रों को राज्य का वितरण किया तो बाहुबली को तक्षशिला का राज्य प्राप्त हुआ।

भरत को जब चक्ररत्न की प्राप्ति हुई तो उन्होंने दिग्विजय करते हुए तक्षशिला में बाहुबली को भी जीतना चाहा। युद्ध के लिए प्रस्तुत होने पर बाहुबली ने दोनों के परस्पर युद्ध का प्रस्ताव रखा ताकि सेना के अन्य लोगों के प्राण बच सकें। इस अहिंसक युद्ध में पराजित होने पर भरत ने बाहुबली पर चक्र का प्रहार किया। किन्तु बाहुबली पर उसका असर नहीं हुआ। इस नीति-विरोधी घटना को देखकर बाहुबली ने राज्यपाट छोड़कर दीक्षा ले ली। किन्तु कठिन तपश्चर्या करने पर भी मान कषाय के कारण उन्हें जब केवलज्ञान नहीं हुआ तो ब्राह्मी ने आकर उन्हें समझाया। तदनन्तर बाहुबली को केवलज्ञान होकर मोक्ष हो गया।[2]

लगभग चौथी शताब्दी के अन्य प्राकृत ग्रन्थ पउमचरियं में बाहुबली की कथा बहुत संक्षेप में है। इसमें भरत और बाहुबली के आपस में भाई होने का कोई उल्लेख नहीं है। ग्रन्थकार कहता है कि तक्षशिला में महान् बाहुबली रहता था। वह सर्वदा भरत राजा का विरोधी था और उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता था:-

तक्खसिलाए महप्पा, बाहुबली तस्स निच्चपडिकूलो।
भरहनरिन्दस्स सया, न कुणइ आणा-पणामं सो ।। 4-38

इस ग्रन्थ में बाहुबली की दीक्षा के बाद मान अहंकार होने का भी कोई उल्लेख नहीं है। दीक्षा लेते ही उन्हें केवलज्ञान हो जाता है। 'जम्बुद्दीवपण्णत्ति' में भी ऋषभ और भरत-बाहुबली के पारिवारिक सम्बन्धों का उल्लेख नहीं है। अतः ज्ञात होता है कि बाहुबली की कथा का विकास कई परम्पराओं में अलग-अलग हुआ है। किन्तु इस कथा के सभी रूपों में निम्नांकित घटनाएँ समान हैं। यद्यपि उनके प्रस्तुतिकरण में भिन्नता है।

प्रमुख कथा-बिन्दु :

(i) स्वतन्त्र राज्य-

बाहुबली तक्षशिला के राजा थे। कुछ ग्रन्थों में उल्लेख है कि यह राज्य उन्हें अपने पिता ऋषभ के द्वारा दिया गया था, तो कुछ स्रोतों का कहना है कि बाहुबली वहाँ के स्वतन्त्र राजा थे, जिनकी भरत से मित्रता नहीं थी। जम्बुद्वीप-प्रज्ञप्ति के अनुसार बाहुबली को बहली का राज्य दिया गया था, जो तक्षशिला के समीप था। बाहुबली की भरत के दूत के साथ जो बातचीत प्राप्त होती है, वह प्राचीन राजनीति की अमूल्य निधि है। उसमें दो स्वतन्त्र राजाओं के कर्तव्य एवं अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख है। भले वे एक ही बाप के दो बेटे क्यों न हों। बाहुबली ने अपनी भूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिए जो संघर्ष किया है, वह विश्व-साहित्य में अमर घटना है। जन-सामान्य में बाहुबली की प्रसिद्धि का यह प्रमुख कारण है।

(ii) अहिंसात्मक युद्धनीति-

बाहुबली के चरित्र की महानता उनके द्वारा अपनायी गयी अहिंसात्मक युद्धनीति है। भरत और बाहुबली के युद्ध का प्रसंग सभी कथाकारों ने उपस्थित किया है। केवल 'भरतेश्वरबाहुबलीवृत्ति'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में यह कहा गया है कि इन देनों के बीच 12 वर्ष तक घमासान युद्ध हुआ। किन्तु अन्य सभी ग्रन्थों में इस युद्ध को हिंसात्मक होने से रोका गया है। अहिंसात्मक युद्ध का प्रस्ताव कहीं इन्द्र या दूत के द्वारा आया है तो कहीं मन्त्रियों द्वारा। किन्तु पउमचरियं, आवश्यकचूर्णि आदि में स्पष्ट रूप से अहिंसात्मक युद्ध का प्रस्ताव बाहुबली के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

भणओ य बाहुबलिणा, चक्कहरो किं वहेण लोयस्स।
दोण्हं पि होउ जुज्झं, दिट्ठीमुट्ठीहिं रणमज्झे।।

(पउमचरियं, 4, 43)

ताहे ते सव्वबलेण दो वि देसंते मिलिया, ताहे बाहुबलिण भणियं-किं अणवराहिणा लोगेण मारिएण ? तुमं अहं च दुयगा जुज्झामो।

- (आवश्यकचूर्णि, पृ. 210)

बाहुबली के व्यक्तित्व की विशालता का प्रमुख अंग है- शक्ति में समर्थ होते भी जनक्षय को रोकने का प्रयत्न करना। लोगों की स्वाधीनता की रक्षा, उनके प्राणों की रक्षा करने की भावना ने बाहुबली के व्यक्तित्व को बहुत ऊंचा उठाया है।

अहिंसात्मक युद्ध के स्वरूप के विषय में भी ग्रन्थों में मतभेद है। कहीं दृष्टि-युद्ध और मल्लयुद्ध का उल्लेख है तो कहीं इसमें जल-युद्ध को भी जोड़ दिया गया है। जिनदासगणि महत्तर ने इसमें वागयुद्ध को और जोड़ दिया है। कहीं दण्डयुद्ध को जोड़कर पाँच युद्धों का वर्णन किया गया है। इस सबका आशय यही है कि भरत और बाहुबली के बीच ऐसे युद्ध हों जो उनकी जय-पराजय का निर्णय कर दें तथा जिनसे हिंसा भी न हो। दूसरी बात, इन युद्धों के द्वारा बाहुबली के शारीरिक गुणों के उत्कर्ष को भी प्रकट करना कथाकारों का उद्देश्य हो सकता है। इन युद्धों में विजयी होने पर भी बाहुबली नैतिक आचरण की प्रतिष्ठा बनाये रखते हैं, जबकि भरत समझौते से डगमगा जाते हैं।

(iii) चक्रका का प्रहार-

बाहुबली की कथा के सभी युद्ध-रूपों में जब भरत बाहुबली से पराजित हो जाते हैं तो वे क्रोध में आकर बाहुबली पर चक्र से प्रहार करते हैं। युद्धनीति का स्पष्ट रूप से यह उल्लंघन है। इस घटना द्वारा भरत का व्यक्तित्व बहुत बौना हो जाता है। बाहुबली के लिए यह घटना जीवन के दिशा-परिवर्तन का केन्द्रबिन्दु बन जाती है। वैराग्य उत्पत्ति के लिए यद्यपि प्राकृत कथाओं में कई मोटिफ्स प्रयुक्त हुए हैं किन्तु चक्र-प्रहार का यह मोटिफ बाहुबली की कथा को विशिष्ट बना देता है। पउमचरियं एवं अन्य प्राकृत ग्रन्थों में इस अवसर पर बाहुबली द्वारा प्रकट किये गये उद्गार भरतीय साहित्य की अमूल्य निधि हैं। मानव व्यक्तित्व के कई पक्ष इससे उजागर होते हैं। भौतिक विजय को तुच्छ गिनकर बाहुबली आध्यात्मिक विजय के लिए अग्रसर हो जाते हैं। मर्यादा तोड़ने वाले की अपेक्षा मर्यादा की रक्षा करने वाला हमेशा बड़ा होता है। इस दृष्टि से बाहुबली का व्यक्तित्व भरत से ऊंचा उठ जाता है।

(iv) केवलज्ञान में विलम्ब-

बाहुबली की तपश्चर्या का विस्तृत वर्णन प्राकृत ग्रन्थों में है। पउमचरियं में बाहुबली द्वारा केवलज्ञान प्राप्ति में किसी विघ्न का उल्लेख नहीं है। किन्तु आगे के कथाकारों ने बाहुबली जैसे विजेता के मानस को और अधिक शुद्ध करने के लिए उनकी मान-कषाय को एक प्रतीक द्वारा तिरोहित करने का प्रयत्न किया है। प्राकृत ग्रन्थों के वर्णन के अनुसार, बाहुबली भगवान् ऋषभदेव

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से दीक्षा लेने नहीं गये, क्योंकि उन्हें पूर्व मे दीक्षित अपने ही छोटे भाई मुनियों को प्रणाम करना होगा। इस मान के काँटे ने बाहुबली को केवलज्ञान नहीं होने दिया। आगे के जैन पुराणों में इसका दूसरा कारण उल्लिखित है। बाहुबली भरत की भूमि पर तप नहीं करना चाहते थे। अतः उनके इस हठाग्रही चित्त ने उन्हें केवलज्ञान नहीं होने दिया। प्राकृत कथाओं में बाहुबली मान-कषाय के लिए प्रतीक बन गये थे। जयन्तीचरित पर मलयप्रभसूरि की वृत्ति में 56 प्राकृत कथाएँ हैं। उनमें मान के लिए बाहुबली की कथा दी गयी है। प्राकृत कथाकोश में भी बाहुबली के मान पर कथा संकलित है। भावपाहुड में मान-कषाय के लिए बाहुबली का उदाहरण दिया गया है।

(v) मानगज से अवतरण:

बाहुबली जैसे विकसित व्यक्तित्व वाले तपस्वी को भी मानरूपी गज पर आरूढ़ रहना हितकर नहीं हुआ। अतः कथा की एक परम्परा में ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी तपस्वी बाहुबली को इस मानगज से उतरने की सलाह देती है- कि आपको छोटे भाइयों को नमस्कार नहीं करना है, चारित्रिक गुणों को नमन करना है। अहंकार को तिरोहित किये बिना आत्मा की ऊंचाई कैसे नापोगे ? इसी बात को एक राजस्थानी कवि कहता है:

वीरा म्हारा गज थकी उत्तरो।.
गजचढयां केवल नहीं होसी रे।।

कथा की दूसरी परम्परा में स्वयं भरत, बाहुबली को निवेदन करते हैं - इस नश्वर संसार में कौन भरत और कहाँ उसकी भूमि ? आप तो असीम हैं, अतः सीमा से ऊपर उठिये। बाहुबली इन संकेतों को गहराई से पकड़ते हैं और उनका अहंकार तत्क्षण तिरोहित हो जाता है। वे केवलज्ञानी हो जाते हैं (जिनसेनकृत महापुराण)।

बहु-आयामी व्यक्तित्व-

बाहुबली की कथा जैन साहित्य की उन प्रमुख कथाओं में से एक है, जो सार्वभौमिक और जन-जीवन से जुड़ी हुई हैं। इस देश में उन महापुरूषों को प्रतिष्ठा मिली है, जो मर्यादा के रक्षक रहे हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम जितने जन-जीवन के नजदीक हैं, उतने निर्गुण परमब्रह्म राम नहीं। बाहुबली को तीर्थंकर न होते हुए भी साहित्य में जो प्रतिष्ठा मिली है, वह उनके मर्यादा-रक्षक होने के कारण। भरत यदि सम्राट् होने के कारण प्रसिद्ध हैं तो बाहुबली उस सम्राट् की अनीति, लालच एवं क्रोध पर विजय पाने के कारण जन-मानस के शिरमौर हैं।

बाहुबली के कथानक में एक प्रच्छन्न मोटिफ का प्रयोग हुआ है। वह है- विशालता, ऊंचेपन का बोध। प्राकृत कथाओं में उनके शरीर को भरत से ऊंचा बताया गया है। बल में वे श्रेष्ठ प्रमाणित होते हैं। भाई के प्रति आत्मीयता के शिखरों को भी उन्होंने छुआ है, जब वे विजयी होने पर भी भरत को जमीन पर नहीं गिरने देते। यह उनकी करुणा की विशालता है। चक्र-प्रहार के रूप में भरत के क्रोध को वे अपनी विजय की क्षमा से जीतते हैं। शक्तिशाली की क्षमा क्या होती है, उसके मेरु हैं-बाहुबली।

भारत ने समस्त पृथ्वी का शासक बनने की आकांक्षा से दिग्विजय की। उनकी इस लोभ की वृत्ति ने भाई को भी युद्ध- भूमि पर ला खड़ा किया। किन्तु इसका उत्तर बाहुबली ने अद्भुत त्याग से दिया। विजयश्री उनके चरणों पर थी। पृथ्वी की सम्पदा के वे स्वामी थे। किन्तु वैराग्य द्वारा उन्होंने दिखा दिया कि भौतिक सम्पत्ति का मोह, लोभ बड़ी क्षुद्र वृत्ति है। विशालता तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके त्यागने में है। बाहुबली के विशालता के मोटिफ ने उन्हें ऐसे तपस्वी बनाया कि आज साहित्य में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं है कि जिसके शरीर में और धरती की मिट्टी में कोई अन्तर न रहा हो। प्राणी और वनस्पति का आश्रय किसी का शरीर बन जाय तो इससे बड़ा वात्सल्य भाव और क्या होगा। विशालता के इस मोटिफ ने बाहुबली की प्रतिमाओं को भी प्रभावित किया। गोम्मटेश्वर बाहुबली की मूर्ति ही विशाल नहीं है, अपितु उसकी स्थापना एवं उसका आयोजन भी विशालता के शिखरों को छूता रहा है।

बाहुबली का कथानक जैन दर्शन में प्रसिद्ध चार कषायों का प्रतीक बना हुआ है। भारत की दिग्विजय-आकांक्षा लोभ को, युद्ध-नीति का उल्लंघन करना माया को, चक्र का प्रहार करना क्रोध को तथा बाहुबली को केवलज्ञान न होना मान को प्रकट करनेवाली घटनाएँ हैं। इन कषायों को जीतने का उदाहरण है- बाहुबली का व्यक्तित्व। साहित्य में एक बहुप्रचलित मोटिफ है- एक का अपकर्ष, दूसरे का उत्कर्ष। राम-रावण, कृष्ण-कंस पाण्डव-कौरव आदि अनेक ऐसे युग्म साहित्य में प्रसिद्ध हैं। भरत-बाहुबली के कथानक के विकास में भी यही मोटिफ गतिशील रहा है। यदि सूक्ष्मता और तुलनात्मक दृष्टि से इस बाहुबली कथानक पर अनुसंधान किया जाय तो कथासाहित्य के विकास पर नया प्रकाश पड़ सकता है।[4]

सन्दर्भ

1. द स्टोरी आफ बाहुबली, सम्बोधि, भागठ, अंक-3-4, 1978
2. मुनि पुण्यविय, वसुदेवहिण्डी, पार्ट। भावनगर, 1931
3. जयन्ती चरितवृत्ति (मलयप्रभसूरी) लींच, मंहसाना, वि.सं. 2006
4. जैन प्रेमसुमन, 'बाहुबली इन प्राकृत लिटरेचर' नामक लेख, गोम्टेश्वर कोमेमोरेशन वालुम, 1981, पृ.76

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एकादश

पालि-प्राकृत कथाओं के अभिप्राय

कथा साहित्य की सार्वजनीन लोकप्रियता के कारण बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रवर्तकों ने भी सहस्रों लोक कथाओं एवं आख्यानों का उपयोग अपने गूढ़विचारों और गहन अनुभूतियों को सरलतम रूप में जनमन तक पहुँचाने के लिए किया है। अनेक नूतन कथाओं-आख्यानों का सृजन भी। पालि कथा-साहित्य में जातक कथाओं के अतिरिक्त दीघनिकाय के ब्रह्मजालसुत्त की कथा-सूची लोक कथाओं के वास्तविक विषय और व्यापक क्षेत्र का परिचय देती है। प्राकृत-साहित्य में भी लोक-कथाओं का खुलकर स्वागत हुआ है। किन्तु प्राकृत कथाकारों ने नवीन कथा-साहित्य की समृद्धता में जो योगदान दिया वह विस्तार, विविधता और बहुभाषाओं के माध्यम की दृष्टि से भारतीय साहित्य में अद्वितीय है।[1]

कथा-साहित्य क्या भारतीय साहित्य की प्रत्येक विधा का अध्ययन पाश्चात्य विद्वानों के प्रयत्न से गतिशील हुआ। किन्तु इससे एक ओर जहाँ उपेक्षित भारतीय साहित्य पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यान के योग्य हुआ, वहाँ उसके आलोचना के क्षेत्र में अनेक भ्रांतियाँ भी पनपती गयीं। पाश्चात्य विद्वानों को प्रामाणिक मान कर भारतीय अध्येताओं ने विषय की गहराई में जाने का प्रयत्न बहुत कम किया है। सम्बन्धित प्रयोगों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखलायी देती है। फलस्वरूप मौलिक चिन्तन अधिक नहीं उभर सका। (उभरने के लिए अब इस अन्धानुकरण से संघर्ष अपेक्षित हो गया है।) पालि प्राकृत कथा साहित्य के अन्तरंग तक पहुँचने के लिए उनके कतिपय अभिप्रायों (motifs) पर एक चिन्तन यहाँ प्रस्तुत है।

अभिप्राय-अध्ययन :

कथाओं में निहित अभिप्रायों का संग्रह कर उनके उत्स का पता लगाना ही कथ्य को हृदयगंम करने का सही रास्ता है। किसी भी कथा के पीछे सांस्कृतिक आधार क्या था, जब तक इसका पता न लगा लिया जाय, तब तक कथा के माध्यम से कथाकार क्या कहना चाहता है, स्पष्ट नहीं होता। कथा के सांस्कृतिक आधार तक हम अभिप्राय-अध्ययन द्वारा पहुँच सकते हैं। क्योंकि कथाकार अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के तद्रूप अभिप्रायों का ही प्रयोग कथा में करता है।

अभिप्राय कथा का अपरिवर्तनीय अंग है। कथा की शैली, कथानक-संगठना, भाषा आदि में क्रमशः परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु सुदीर्घ परम्परा के बाद भी कथा का अभिप्राय नहीं बदलता। अतः अभिप्राय-अध्ययन हमें कथा के जन्म तक ले जाने की क्षमता रखता है। कथाओं का जनम उतना ही प्राचीन है, जितना मानव। अतः अभिप्राय-अध्ययन का अर्थ है- मानव-विकास के इतिहास का अध्ययन। मानव ने अपने अस्तित्व की रक्षा तथा जीवन को सुखी और उन्नत बनाने के लिए जितने प्रकार के सामाजिक संघर्ष किये हैं उनके स्मृति चिन्ह इन अभिप्रायों में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं।[2] मानव की एक विशेष प्रवृत्ति है- ऊपर उठने की। वह अपनी सब बाधाओं को भौतिक और मानसिक रूप से विजित देखना चाहता है। अतः मानव-मन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

की अज्ञात और अप्राप्त के प्रति तीव्र जिज्ञासा ने ही अनेक अभिप्रायों का निर्माण किया है, जिनका समबन्ध धर्म, दर्शन और नैतिकता से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार अभिप्राय-अध्ययन द्वारा न केवल कथाओं के हार्द तक पहुँचा जा सकता है, अपितु मानवीय-मूल वृत्तियों की विकसित-परम्परा का भी ज्ञान होता है।[3]

अभिप्राय-अध्ययन के प्रयत्न विदेशी विद्वानों द्वारा पर्याप्त मात्रा में किये गये हैं। ब्लूमफील्ड और उनके सहयोगियों के अतिरिक्त बेनिफी, हानी, जैकोबी, बेबर, थामसन और पेंजर आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्हीं को आधार मान कर कुछ भारतीय विद्वानों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किये हैं। किन्तु प्रश्न यह है-क्या इन सब प्रयत्नों को अभिप्राय-अध्ययन का नाम दिया जा सकता है ? केवल कथानक-संगठना का वर्गीकरण अभिप्राय-अध्ययन नहीं है। कैदी राजा ओर उसकी पुत्री, पेटुपने की चिकित्सा, भूख हड़ताल, बदला हुआ पत्र, निर्दोष भिक्षु को पति ने पीटा आदि घटनाओं को अभिप्राव मानकर उनका अध्ययन करना हमें किस शाश्वत तथ्य का परिचय देता है समझ में नहीं आता ? अतः पाश्चात्य विद्वानों के अब तक किये गये कार्य का अपनी दृष्टि से परीक्षण करना नितान्त आवश्यक है।

अभिप्राय की परिभाषा संबंधी भ्रान्तियां :

अभिप्राय (motif) शब्द का प्रयोग पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक अर्थों में किया है। भारत की कथाओं पर प्रथम कार्य टेम्पल महोदय ने कथा में प्रयुक्त घटना या घटनाओं को अभिप्राय कहा है।[4] बाद के अन्य विद्वानों-स्विरनरटन, पेंजर, वेरियर एलविन आदि ने भी इसी का अनुकरण किया और अभिप्रायों के अन्तर्गत घटनाओं का अध्ययन करते रहे। इनके विचार से चोरी से ले जाना, कुतिया और मिर्च, ईष्यालू रानी, पशु से विवाह, चुहिया कुमारी आदि विभिन्न कथाओं की विशेष घटनाएं अभिप्राय हैं। किन्हीं विद्वानों ने कथा के फल को अभिप्राय कहा है यथा- घमण्ड का फल, लोभ का फल, चोरी का फल, कर्म फल आदि। किन्तु घटना और परिणाम को अभिप्राय मानना कहाँ तक युक्ति-संगत है ? कथा के उत्स को खोजने में घटना सहायक नहीं है। परिस्थिति अनुसार एक कथा में अनेक घटनाएं हो सकती हैं, किन्तु परम्परा में सभी का स्थिर रहना जरूरी नहीं है और न ही सभी कथा के अन्तरंग की संवाहक होती हैं। अतः घटना विशेष को अभिप्राय मानना ठीक नहीं। परिणाम इसलिए अभिप्राय नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक ही कथा के विभिन्न उपयोग हो सकते हैं और उतने ही उन के परिणाम। झूठ बोलने का फल किसी एक कथा में फांसी की सजा हो सकती है तो दूसरी कथा में किसी नरक विशेष की प्राप्ति। अतः यहाँ परिणाम को अभिप्राय न कह कर असद्वृत्ति के प्रदर्शन का अभिप्राय कहा जा सकता है, जो अपने आप में काफी विस्तार लिए हुए है।

सिपले महोदय ने अभिप्राय को परिभाषित करते हुए कहा है- "Motif-A word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a work or in various works of a genre."[6] 'अभिप्राय उस शब्द अथवा एक सांचे में ढले हुए उस विचार को कहते हैं जो समान परिस्थितियों में अथवा समान मन-स्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियों में बार-बार आता है।' अभिप्राय की इस सामान्य परिभाषा से प्रभावित होकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय विद्वानों ने विभिन्न कथा-कहानियों में बार-बार व्यवहृत होने वाली एक जैसी घटनाओं अथवा विचारों को अभिप्राय मानने की भ्रान्तियां की हैं। जबकि घटना और विचार दोनों ही किसी एक निश्चित अभिप्राय के परिणाम होते हैं। जैसे किसी कथा में मनुष्य बलि के होने की घटना आती है। कोई पात्र विशेष मनुष्य बलि का होना ठीक नहीं समझता और आखिरी समय में मनुष्य को बलि होने से बचा लिया जाता है। इसमें बलि की घटना और बलि को बचाने का विचार दोनों हैं। कई जगह इनकी पुनरावृत्ति भी हो सकती है। किन्तु इसके मूल में है- 'मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता' का अभिप्राय।

इसी तरह मानवीय मूल वृत्तियों से सम्बन्धित अनेक अभिप्राय हो सकते हैं, जिनमें सद्-असद् वृत्तियों को उभारने के लिए अनेक घटनाओं और विचारों का उपयोग किया जा सकता है। अतः मात्र घटनाओं और विचारों की पुनरावृत्ति को अभिप्राय मानने की अपेक्षा उनके जनक को अभिप्राय मानना अधिक युक्तिसंगत होगा। इस प्रकार मानव जीवन की सुख और दुख से संयुक्त जो शाश्वत कथा है उसके संवाहक भाव को अभिप्राय कहा जा सकता है। भले हम इसे किसी नाम से पुकारें।

अभिप्राय-वर्गीकरण :

प्रायः अभिप्रायों का वर्गीकरण अभिप्राय सम्बन्धी उक्त धारणा को केन्द्र बनाकर ही किया गया है, जिसमें घटनाओं और विचारों के एकांश की बहुलता है। मूल अभिप्रायों के अनुसार विषयवार वर्गीकरण कम हुआ है। टॉमसन की अभिप्राय-अनुक्रमणिका (motif Index) अभिप्राय-अध्ययन के क्षेत्र में प्रथम कार्य होने से सराहनीय है, वैज्ञानिक भी। किन्तु भारतीय कथा-साहित्य के अभिप्रायों के वर्गीकरण के सन्दर्भ में उसमें कुछ परिवर्तन भी अपेक्षित है। यथा- उक्त अनुक्रमणिका में जो पशु-विषयक अभिप्रायों की तालिका है उसका सम्बन्ध केवल पशुओं से नहीं है और न वे पशुओं के अभिप्राय ही हैं। बल्कि इन सभी अभिप्रायों का सम्बन्ध मानव की मूल कल्पना वृत्ति से है, जिसका उपयोग उसने अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए इन अभिप्रायों के माध्यम किया है। मानव ने अपने ही गुणों को विकसित रूप में पशु-जगत् में देखना चाहा है।[7]

भारतीय कथा-साहित्य के सभी अभिप्रायों का वर्णीकरण यहाँ प्रतिपाद्य भी नहीं है और न सम्भव ही। अतः केवल पालि-प्राकृत कथा-साहित्य के कुछ प्रमुख अभिप्रायों का वर्गीकरण यहाँ प्रस्तुत है। अभिप्राय-वर्गीकरण में यहाँ मानवीय मूल वृत्तियों का विशेष ध्यान रखा गया है। पालि-प्राकृत कथा-साहित्य के अभिप्राय निम्न वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं:

1. मानवीय वृत्तियों से सम्बद्धः-

(अ) मानवीय वृत्तियां दो प्रकार की हैं- सद् और असद्। अधिकांश अभिप्राय इन्हीं दो वृत्तियों से मूल रूप से सम्बन्धित हैं। अतः अभिप्रायों को घटनाओं के नाम से वर्गीकृत न कर इन्हीं दो वृत्तियों के नाम से वर्गीकृत करना चाहिये। यथा- संकटाकीर्ण कार्य सौंपना, हाथी को वश में करना, सार्त समुन्दर पार से गुलाब का फूल लाना, धनुष तोड़ना, प्रेयसी को बन्धन से छुड़ाना, फलक के सहारे समुद्र पार करना आदि तथाकथित अभिप्राय (घटनाएं) 'पराक्रम-प्रदर्शन' सद्वृत्ति के अभिप्राय के अन्तर्गत रखे जा सकते है। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति को धोखा,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धन के लिए मित्र का वध, धरोहर का नकारना, आदि अभिप्राय 'विश्वासघात' असद्वृत्ति अभिप्राय के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इस प्रकार के वर्गीकरण में प्रयत्नलाघव तो है ही, इससे अभिप्रायों की परम्परा अक्षुण्ण बनी रहती है। पराक्रम, विवेक, मित्रता, वात्सल्य, उपकार, सहनशीलता, विद्या आदि सद् अभिप्राय एवं कायरता, अज्ञान, बैर घृणा, कृतघ्नता, क्रोध, काम, लोलुपता आदि असद् अभिप्राय हमेशा हर साहित्य में विद्यमान मिलेंगे, जबकि सभी को वश में करना, मित्र को धन को लिए धोखा देना आदि घटनाएँ देश-काल से सीमित हो सकती हैं।

(ब) किन्हीं कथाओं में यह देखा जाता है कि सद्वृत्ति द्वारा असद्वृत्ति पर विजय प्राप्ति के प्रयत्न किये जाते हैं। ऐसी कथाओं के अभिप्राय अलग वर्गीकृत किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रसंग लिया जा सकता है। सौतेली मां द्वारा अनेक बार अपने रूपवान एवं पुत्र से समागम की याचना की गयी है। पुत्र द्वारा इसे न स्वीकारने पर उस पर बलात्कार का झूठा इल्जाम लगाया गया है। किन्तु अन्त में भेद खुलने पर सौतेली मां द्वारा या तो क्षमा मांगी गई है या उसे राजा द्वारा दण्ड दिया गया है। यहाँ या इससे सम्बन्धित कथाओं में काम प्रवृत्ति पर शील की विजय दिखायी गयी है। इसी तरह क्रोध-क्षमा बैर-मित्रता, अधर्म-धर्म आदि के भी प्रसंग कथाओं में आये हैं। इन सब को 'सद्की असद् पर विजय' अभिप्राय के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

जिन अभिप्रायों का सद्-असद् वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध न हो उन्हें विशेष अभिप्रायों के रूप में अलग वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा-

2. **परीक्षण अभिप्रायः**- इसके अन्तर्गत सत्यपरीक्षा, बुद्धिपरीक्षा, साहसपरीक्षा, शर्त, पहेलियां, आदि परीक्षाओं से सम्बन्धित प्रसंग रखे जा सकते हैं। परीक्षण अभिप्राय के मूल में किसी भी प्रकार की बाधाओं की चिन्ता न करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने की भावना है। पालि-प्राकृत कथाओं में अनेक स्थानों में इसका प्रयोग हुआ है। बुद्ध के साथ मार का संघर्ष और जैन तपस्वियों के 22 परीषह उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं।

3. **निषेध अभिप्रायः**- कथाओं में वर्जन के अनेक प्रसंग आते हैं। यौन-वर्जन, खान-पान-वर्जन, स्पर्श-वर्जन दिशा-वर्जन आदि। इन सब का एक ही भाव होता है- नायक के सुषुप्त पराक्रम, विवेक को जाग्रत करना। इसके द्वारा उसके चारित्र का उत्कर्ष दिखाना। इस अभिप्राय का सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से है, अतः इसे अलग रखना ही ठीक होगा। इस अभिप्राय द्वारा संघर्ष की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गयी है।

4. **सहायक अभिप्रायः**- मानव की सद्वृत्तियों के विकास के लिए कथा में अनेक सहायक अभिप्रायों का भी प्रयोग हुआ है। स्वप्नप्रदर्शन, भविष्यवाणी, आकाशवाणी, विद्याधर व यक्षों द्वारा सहायता, देवों के अलौकिक कार्य आदि इस अभिप्राय से सम्बन्धित हैं। इस अभिप्राय द्वारा मानवीय अपूर्णता को प्रगट किया गया है। हर तरह से मानव सशक्त होते हुए भी कभी न कभी ऐसी स्थिति को प्राप्त होता है, जब उसे अन्य की सहायता लेनी पड़ती है।

5. **बाधक अभिप्रायः**- इसका उपयोग असद् वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए कथाओं में किया गया है। कथा का नायक साधारण तरीके से सहज ही यदि किसी राजकुमारी को प्राप्त कर ले तो उसके चरित्र की कोई विशेषता नहीं रहती और कथा भी समाप्त हो जाती है। अतः उसके रास्ते में प्राकृतिक व अमानवीय अनेक तरह की बाधक शक्तियों को उपस्थित किया जाता है, जिन पर विजय प्राप्त कर नायक लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

6. **अध्यात्म-चिन्तन से सम्बद्ध** अभिप्रायः- कथाओं में अनेक अभिप्राय अध्यात्म-चिन्तन से सम्बद्ध होते हैं। मानव की सद्-असद् वृत्तियों के प्रकाशन के अतिरिक्त उसके चरम और उत्कर्ष का प्रयत्न भी भारतीय कथाओं द्वारा किया गया है। विषय-भोग और वमन, बैराग्य के कारण, कर्मों का फल, पुनर्जन्म, जीवन की क्षण-भंगुरता, संसार-भ्रमण और मुक्ति, व्रतों का पालन, मनुष्य जीवन की दुर्लभता आदि का प्रतिपादन इस अभिप्राय के अन्तर्गत है।

इस अभिप्राय-वर्गीकरण के अन्तर्गत कथाओं में प्रयुक्त प्रायः सभी अभिप्राय आ जाते हैं। कुछ यदि इस परिधि के बाहर भी होते हैं तो उनके अन्तरंग को जानने का प्रयत्न होना चाहिये, तब उन्हें अलग वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा- पशुओं व पक्षियों से सम्बन्धित जितने अभिप्राय हैं उन्हें कुत्ते का महमान, बिल्ली की चाल, होशियार लोमड़ी, जिद्दी बकरे, पंडित तोता, लेटी हुई बकरी, कौआ कोयल आदि नाम देने की अपेक्षा इनके मानवीयकरण को ध्यान में रख कर मानव की उस कल्पना और सम्भावना को सामने लाने का प्रयत्न होना चाहिये जिसके द्वारा उसने अपनी अपूर्णता को पूर्णता प्रदान की है। यही दृष्टि अमानवीय शक्तियों से सम्बद्ध अभिप्रायों के वर्गीकरण के समय होनी चाहिए। यक्ष, राक्षस, व्यन्तर, देव आदि ने क्या कार्य किये यह उतना महत्व का नहीं है, जितना यह कि इनके द्वारा मानव के आत्म-सरक्षण की प्रवृत्ति कितनी हुई है।[8]

अभिप्रायों के प्रयोग की प्रक्रिया :

अभिप्राय-अध्ययन के समय उनके प्रयोगों पर विचार करना बहुत जरूरी है। क्योंकि एक अभिप्राय विभिन्न कथाओं में अनेक ढंग से प्रयुक्त हुआ मिल सकता है। अभिप्रायों के प्रयोग पर विचार करने से अभिप्राय का मूल स्वरूप उसकी अर्थवत्ता, प्रसार-यात्रा रूपान्तरित रूप तथा विविध रूपों के पारस्परिक सम्बधों पर प्रकाश पड़ता है। इससे सम्बन्धित कथाएं ही स्पष्ट नहीं होतीं, अपितु विभिन्न कालों के सांस्कृतिक पक्ष भी उजागर होते हैं। उदाहरण स्वरूप सांसारिक दुख और जीवन के अभिप्राय को लें। इसका प्रयोग ब्राह्मण, महाभारत, जैन, बौद्ध ईसाई, मुस्लिम कथा-साहित्य में हुआ है। प्रारम्भ में नाना दुःखों से युक्त एक कुए में मृत्यु से भयभीत पुरुष को स्थित दिखा कर उसे मधु के बिन्दु में आसक्त बतलाकर सांसारिक दुख और जीवन का यथार्य प्रतिपादित कया गया है।[9] आगे चल कर इसी का स्वरूप बदल गया है। सांसारिक दुःखों के परिज्ञान के लिए कुआ न होकर रोग, बुढ़ापा और मृत्यु को साधन बनाया गया है। मोहासक्ति के लिए राजपाट कारण बना है।[10] प्राकृत कथाओं में निर्जन द्वीप के विविध कष्ट सांसारिक दुखों के प्रतीक हैं और मोहासक्ति कादम्बरी फलों द्वारा अभिव्यक्त की गई है।[11] आगे इस अभिप्राय के और भी रूपान्तर हुए हैं।[12]

अब यदि इस अभिप्राय को अभिव्यक्त करने वाले उपकरणों-कूपनर, मधुविन्दु आदि को अभिप्राय मान लिया जाय तो आगे चलकर हो सकता है इनका अस्तित्व भी न मिले, जबकि सांसारिक दुख और जीवन की व्याख्या हमेशा होती रहेगी, भले उसकी अभिव्यक्ति के उपकरणों में भिन्नता हो। अतः अभिप्रायों के मूल तक पहुँचने और उनके सही एवं पूर्ण अध्ययन के लिए अभिप्रायों के प्रयोग की प्रक्रिया का परिज्ञान आवश्यक है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दार्शनिक-अभिप्राय :

पालि-प्राकृत कथाओं का सम्बन्ध चूंकि किसी एक विशेष धर्म से है अतः स्वभावतः अनेक कथाएँ अपने मूल रूप का विसर्जन कर शुद्ध धार्मिक व दार्शनिक बन गई हैं। उनकी पुनरावृत्ति एकाधिक बार होने से उनके किसी एक मूल तत्व ने निश्चित अर्थबोधक अभिप्राय का रूप धारण कर लिया है। ऐसे अभिप्रायों का उद्देश्य मात्र उपदेश देना नहीं है, बल्कि उनके पीछे चिन्तन की एक निश्चित परम्परा है। प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का सामर्थ्य। यहाँ पालि-प्राकृत कथाओं के कुछ प्रमुख दार्शनिक अभिप्रायों का विवरण प्रस्तुत है। चूंकि दर्शन का सम्बन्ध शाश्वत सत्यों के उद्घाटन से है, अतः इसके अन्तर्गत वे सभी अभिप्राय आते हैं जिनमें चिन्तन की एक निश्चित परम्परा है। किन्तु यहाँ उन सबका विवेचन करना सम्भव नहीं है। अतः पालि-प्राकृत कथाओं के अध्यात्मचिन्तन अभिप्राय से सम्बन्धित अभिप्राय ही विवेच्य हैं।

पालि कथाओं में जातकों का प्रमुख स्थान है। जातकों का विषयवार वर्गीकरण न होने से धर्म व दर्शन सम्बन्धी कथाओं व उनके अभिप्रायों को खोजना बड़ा कठिन है। विन्तरनित्स के वर्गीकरण के अनुसार जिन जातकों को धार्मिक कहा गया है,[13] उनके एवं अन्य पालि कथाओं के निम्न दार्शनिक अभिप्राय सामने उभरते हैं:-

1. काया की तुच्छता 2. श्वेत बाल 3. कर्मों का फल 4. संसार सुख विषफल के समान 5. विष-वमन के समान 6. हिंसायज्ञ के स्थान पर ज्ञान यज्ञ 7. रूप-रस-गन्ध स्पर्श के आकर्षण का त्याग 8. मुर्दों से खाली जगह 9. मैत्री भावना का महत्व 10. पुत्र और दास का सबसे बड़ा बन्धन 11. दान देने का महत्व एवं फल 12. पुण्य सब सुखदाता 13. जागरूक होने का फल 14. इन्द्रियजित होना 15. क्रोध, द्वेष लोभ, मोह के दोष 16. चित्त-क्लेश (पाप) कभी छोटा नहीं होता 17. क्षणिक आयु 18. वीणा के तार 19. हिंसा का विरोध आदि।[14]

उक्त दार्शनिक अभिप्राय प्रायः अपने आप में स्पष्ट हैं। काया की तुच्छता और श्वेत वाल को वैराग्य का कारण बताया गया है। कर्मों का फल दर्शाने वाली अनेक कथाएँ हैं। शुभ कर्मों के शुभ फल के लिए विमान वत्थु की कथाएँ एवं अशुभ कर्मों के अशुभ फल के लिए पेतवत्थु की कथाएँ उदाहरण के लिए पर्याप्त हैं। मुर्दों से खाली जगह अभिप्राय द्वारा संसार की अनित्यता का दिग्दर्शन कराया गया है कि पृथ्वी में ऐसी जगह नहीं है जहाँ किसी न कसी को न जलाया गया हो। अतः सबकी मृत्यु अनिवार्य है। जो सत्य, धर्म, अहिंसा और संयम का पालन करता है, वही लोक में नहीं मरता। वीणा के तार का अभिप्राय पाली साहित्य में अनेक जगह मध्यममार्ग को प्रतिपादित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। सोनकोलिविस ने जब अत्यधिक कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दी तो उन्हें दुखी देखकर बुद्ध ने समझाया कि जैसे वीणा के तार अधिक कस देने और अधिक ढीले कर देने से वीणा ठीक से नहीं बज पाती उसी प्रकार अत्यधिक उद्योग-परायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती है, अत्यधिक शिथिलता शारीरिक आलस्य को उत्पन्न करती है। इसलिए सोण उद्योग करने में समता ग्रहण करे, इन्द्रियों के सम्बन्धों में समता ग्रहण करे।[15] यही मध्यममार्ग है।

प्राकृत कथाओं के दार्शनिक अभिप्रायों की अपनी एक निजी विशेषता है। इनमें प्रतीकों का प्रयोग अधिक हुआ है। पालि जातकों की अपेक्षा इन कथाओं का सम्बन्ध वर्तमान जीवन से अधिक है। अतः कथा नायक को जिस किसी दार्शनिक सिद्धान्त से अवगत कराना अपेक्षित है

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उसे पूर्णरूप से घटित कर दिखाया है। दूसरी बात, प्राकृत कथाएँ किसी एक ही व्यक्ति द्वारा कथित व लिखित न होने के कारण विभिन्न कल्पनाओं व दृष्टान्तों से संलिष्ट हैं। इसलिए इनके दार्शनिक अभिप्राय गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्त को भी जीवन में उतारने में सक्षम हैं। उनकी एक सुदीर्घ परम्परा है। प्राकृत कथाओं में निम्न प्रमुख दार्शनिक अभिप्राय प्रयुक्त हुए हैं:-

1. समुद्र यात्रा और जलयान का भंग होना।
2. पुण्डरीक
3. मधुबिन्दु
4. सर्षप दाना
5. रत्न द्वीप की यात्रा
6. कड़वी तुम्बी का तीर्थ स्थान
7. एक का अपकर्ष, दूसरे का उत्कर्ष
8. सत्य परीक्षा
9. वैराग्य प्राप्ति के निमित्तों की योजना
10. व्रतों का पालन
11. मनुष्य जीवन की सार्थकता
12. पूर्वभव
13. विषयभोग और वमन या विषफल
14. परीषह सहन
15. आत्मा से सम्बद्ध
16. अन्य दार्शनिक अभिप्राय

समुद्रयात्रा और जलयान का भग्न होना :

समुद्रयात्रा का अभिप्राय भारती कथा-साहित्य में बहुत लोकप्रिय रहा है। जब कभी धनोपार्जन या नायक के पराक्रम को दशनि की आवश्यकता हुई तभी समुद्रयात्रा को कथाओं में प्रवेश मिल गया। प्राकृत कथाओं में समुद्रयात्रा के साथ जलयान भग्न को भी जोड़ दिया गया है। इससे इस अभिप्राय को दुहरी सार्थकता प्राप्त हो गयी। धनोपार्जन या पराक्रम का द्योतक होते हुए यह एक शाश्वत सत्य का प्रतिपादक भी हो गया। कुवलयमालाकहा में इस अभिप्राय को उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।

पाटलिपुत्र का धन नामक वणिक् जलयान के द्वारा रत्नद्वीप के लिए रवाना हुआ। बीच समुद्र में आंधी आ जाने से उसका जहाज टूट गया। धनदेव एक फलक के सहारे कुडंगद्वीप मे जाकर किनारे लगा। वह द्वीप नाना दुःखों से परिपूर्ण था। धनदेव को वहां दो वणिक् और मिले जो उसी की तरह सुवर्ण द्वीप और लंकापुरी को जाते हुए जहाज टूट जाने से वहां आ टिके थे। तीनों समान-दुखी होने से मित्र हो गये। उन्होंने अपने-अपने चिन्ह-विशेष पेड़ के ऊपर बांध दिये ताकि कोई जहाज यदि वहां से गुजरे तो उन्हें देख कर अपने साथ ले ले।

उन वणिकों ने उस द्वीप में एकाएक कादम्बरी के वृक्ष देखे। वे फूले न समाये। किन्तु उनमें एक भी फल नहीं था। कुछ दिनों बाद उनमें फल लगे। वे उन्हीं की रक्षा करते हुए अपने दिन व्यतीत करने लगे। तभी एक दिन एक जहाज वहां से गुजरा। सार्थवाह ने पेड़ पर टंगे चिन्हों को देख कर नौका द्वारा दो निर्यामकों को तीर पर भेजा। उन निर्यामकों ने धनदेव आदि वणिकों से कहा- हमें सार्थवाह ने भेजा है। आप लोग हमारे साथ जहाज में चलें। इस अपार दुखपूर्ण द्वीप को छोड़ दें। इनमें से एक वणिक ने कहा- 'इस द्वीप में क्या दुख है? यह तो अब घर जैसा हो गया है। कादम्बरी वृक्षों में फल आ गये हैं। उन्हीं को खाते-पीते मैं तो अब यहीं रहूँगा।' दूसरे वणिक् ने भी यही कहा और दोनों वहीं रह गये। किन्तु धनदेव ने निर्यामकों से कहा- 'आप लोगों का स्वागत है। आप आ गये यह बहुत अच्छा हुआ। यहाँ के ये सुख तो तुच्छ और अनित्य हैं। दुख ही यहाँ ज्यादा हैं। अतः मैं तो आपके साथ चलूँगा।' धनदेव निर्यामकों के साथ नाव में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बैठकर जहाज में आ गया। जहाज द्वारा तट पर पहुँच कर अपने सम्बन्धी-जनों से मिल कर आनन्द का अनुभव करने लगा।

इस कथानक में समुद्र संसार का प्रतीक है, आंधी से विक्षुब्ध तरंगें जन्म-जरा-मरण की प्रतीक और कुडंगद्वीप मनुष्य जन्म का। तीन वणिक तीन प्रकार के जीव हैं। जलयान भग्न हो कुडंगद्वीप में पहुंचना आयु समाप्ति के बाद मनुष्य जन्म पाना है। कादम्बरी वृक्ष महिलाओं के प्रतीक हैं, उनमें फल आना सन्तान या धन-सम्पत्ति का प्रतीक है। उनकी रक्षा करना इनके झूठे मोह में फंसना है। निर्यामक धर्माचार्य हैं, नौका दीक्षा और तट प्राप्त करना मोक्ष की उपलब्धि है।[16]

पुण्डरीक :

पुण्डरीक का कथानक निर्वाण की प्राप्ति मनुष्य के अपने हाथ में है, इस ओर सकेत करता है। एक सरोवर जल और कीचड़ से भरा हुआ है। उसमें अनेक श्वेत कमल विकसित हैं। सबके बीच में खिला हुआ विशाल श्वेत कमल बहुत ही मनोहर दिख रहा है। पूर्व दिशा से एक पुरुष आता है और उस श्वेत कमल पर मोहित हो उसे लेने लगता है, परन्तु कमल तक न पहुँच कर बीच में फंस कर रह जाता है। अन्य तीन दिशाओं से आये हुए पुरुषों की भी यही दुर्गति होती है। अन्त में एक वीतरागी और संसार तरण का विशेषज्ञ भिक्षु वहाँ आता है। वह कमल और इन फंसे हुए व्यक्तियों को देख कर सम्पूर्ण रहस्य को हृदयगंम कर लेता है। अतः वह सरोवर के किनारे पर ही खड़ा होकर श्वेत कमल को अपने पास बुला लेता है। श्वेत कमल उसके पास आ गिरता है।[17]

इस दृष्टान्त में वर्णित सरोवर संसार है, पानी कर्म, कीचड़ काम-भोग, विराट श्वेत कमल राजा और अन्य कमल जन-समुदाय हैं। चार पुरुष विभिन्न मतवादी हैं और भिक्षु सद्धर्म है। सरोवर का किनारा संघ है, भिक्षु का कमल को बुलाना धर्मोपदेश। और कमल का आ जाना निर्वाण लाभ है।[18]

मधुबिन्दु :

मधुबिन्दु-अभिप्राय भारतीय कथा-साहित्य में बहुत लोकप्रिय रहा है। इसके पीछे जो चिरन्तन सत्य विद्यमान है जसे कोई भी चिन्तनशील विचारक व धर्म नहीं नकार सका। सांसारिक जीवन की इतनी सुन्दर व्याख्या अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। महाभारत, ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, मुसलमान और यहूदी कथाओं में थोड़े परिवर्तन के साथ यह दार्शनिक अभिप्राय प्राप्त होता है। भारत के बाहर भी यह कथा पायी जाती है।[19] प्राकृत कथाओं में इस अभिप्राय की कथा यह है -

कोई एक दरिद्र पुरुष परदेश जाते हुए भयानक अटवी में पहुंचा। उसने देखा कि एक जंगली हाथी उसका पीछा कर रहा है। वह व्यक्ति भागने लगा। आगे जाकर देखा तो सामने एक दुष्ट राक्षसी तलवार लेकर खड़ी थी। उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे। इतने में उसे वट का एक विशाल वृक्ष दिखायी पड़ा। वह दौड़कर वृक्ष के पास पहुँचा, लेकिन उसके ऊपर चढ़ न सका। वृक्ष के पास ही तृणों से आच्छादित एक कुंआ था। अपनी जान बचाने के लिए वह कुंए में कूद पड़ा। वह कुंए की दीवाल पर उगे हुए एक सरकड़े के ऊपर गिरा। उसने देखा दीवाल के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चारों ओर चार भयंकर सर्प फुंकार मार रहे हैं और सरकंडे की जड़ में एक भयंकर अजगर लटका हुआ है। वह सरकंडा का अगला भाग पकड़ कर लटक गया। तभी उसने देखा कि दो बड़े-बड़े चूहे-एक सफेद एक काला- उस सरकंडे की जड़ को काटने में लगे हैं। हाथी इस पुरुष तक पहुँच नहीं सका, इसलिए वह गुस्से में जोर-जोर से वट वृक्ष को हिलाने लगा। वृक्ष पर मधुमक्खियों का एक छत्ता लगा हुआ था। छत्ते की मक्खियां उड़कर उस पुरुष के शरीर में लिपट कर काटने लगीं। साथ ही छत्ते में से मधु का एक विन्दु उस पुरुष के माथे पर टपक कर उसके मुंह में चला गया। वह पुरुष मधु के स्वाद में मग्न हो गया। तभी वहां से एक विद्याधर का विमान गुजरा। उसने इस पुरुष को संकटापन्न स्थिति में देख करुणावश अपने साथ चलने को कहा। किन्तु पुरुष यह कह कर कि मधु की एक-दो बूंद शायद और आ जांय उन्हें चख लूँ, वहीं लटका रहा।[20]

इस कथानक में भयंकर अटवी संसार का प्रतीक है, पुरुष जीव का, राक्षसी वृद्धावस्था और हाथी मृत्यु का। वट वृक्ष मोक्ष है, जहाँ मरणरूप हाथी का भय नहीं है। कुंआ मनुष्य-जन्म का प्रतीक है, चार सर्प (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार कषाओं के और सरकंडा जीवन का। सफेद काले चूहे समय के शुक्ल और कृष्ण पक्ष हैं, जो जीवन को क्रमशः क्षीण करते हैं। मधुमक्खियां अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियां हैं। अजगर नरक का प्रतीक है, विद्याधर धर्माचार्य या शुभाचरण का और मधु की बूंदें सांसारिक विषय-भोग की।[21]

सर्षप दाना :

'सर्षप दाना' अभिप्राय प्राकृत-कथाओं में सांसारिक अनित्यता और मनुष्य-जन्म की दुर्लभता को प्रतिपादन करने में प्रयुक्त हुआ है। किसी एक वृद्धा के अत्यन्त प्रिय एवं एकमात्र सहारा पुत्र का अचानक मरण हो जाता है। वह वृद्धा अपने जवान पुत्र की लाश को लेकर आचार्य के पास जाकर कहती है कि तुम्हारे धर्म का पालन करते हुए भी मेरे पुत्र की मृत्यु कैसे हो गई। इसे जिन्दा करें। आचार्य उसे मृत्यु के शाश्वत नियम को समझाने के लिए किसी ऐसे घर से सरसों के दाने मांगकर लाने को कहते हैं, जहां कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।[22]

यह अभिप्राय अनेक जगह प्रयुक्त हुआ है।[23] कहीं सरसों के दानों की जगह चावल के दाने मांगने को कहा गया है। जातक कथाओं में इसका बदला हुआ रूप मिलता है। बहुत सम्भव है मूलरूप यही रहा हो। सरसों या चावल के दाने बाद के रूपान्तर हों। उपसालहक जातक में एक ब्राह्मण अपने पुत्र से कहता है कि मुझे मरने के बाद ऐसी जगह जलाना जहां कभी कोई मुर्दा न जला हो। भगवान बुद्ध उसके पुत्र को बताते हैं कि दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ कोई न कोई जलाया न गया हो।[24]

मनुष्य-जन्म की दुर्लभता प्रतिपादित करते हुए सरसों के दानों द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है। यदि समस्त भरत क्षेत्र के धान्यों को मिला कर उसमें एक प्रस्थ सरसों मिला दी जाये तो जैसे किसी दुर्बल और रोगी वृद्धा स्त्री के लिए इस थोडी-सी सरसों को समस्त धान्यों से पृथक करना अत्यन्त कठिन है उसी प्रकार अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए जीव को मनुष्य-जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है। इसके लिए अन्य दृष्टान्त भी दिये गये हैं।[25]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नद्वीप की यात्रा :

'रत्नद्वीप की यात्रा' अभिप्राय अनेक प्राकृत कथाओं में प्रयुक्त हुआ है। इसके द्वारा कष्टों को सहन कर रत्न प्राप्त कर लाना बतलाया गया है। कोई एक दरिद्र वणिक रत्नद्वीप में पहुँचा। वहाँ उसने सुन्दर और मूल्यवान रत्न प्राप्त किये। मार्ग में चोरों का भय था, अतः वह दिखाने के लिए सामान्य पत्थरों को हाथ में लेकर और पागलों की तरह यह चिल्लाता हुआ कि रत्नवणिक जा रहा है, चला। चलते-चलते जब वह अरण्य में पहुँचा तो उसे प्यास लगी। उसे एक गंदा कीचड़ मिश्रित जलाशय मिला। यह जल अत्यन्त दुर्गन्धित और अपेय था। प्यास से बेचैन होने के कारण उसने आंखें बन्दकर बिना स्वाद लिये ही जीवन-धारण के निमित्त जल-ग्रहण किया। इस प्रकार अनेक कष्ट सहन कर वह रत्नों को ले आया।[26]

इस कथानक में रत्नत्रय-सम्यक् दर्शन, सम्य-ज्ञान और सम्यक् चारित्र-के प्रतीक हैं, चोर विषय-वासना के और बेस्वाद कीचड़-मिश्रित जल प्रासुक भोजन का। रत्नत्रय की प्राप्ति सावधानीपूर्वक विषय-वासना का त्याग करने से होती है। इन्द्रिय-निग्रही और संयमी व्यक्ति ही रत्नत्रय की रक्षा कर सकता है। रत्नद्वीप मनुष्यभव का प्रतीक है। जिस प्रकार रत्नों की प्राप्ति रत्नद्वीप में होती है, उसी प्रकार रत्नत्रय की प्राप्ति इस मनुष्य भव में।[27]

कड़वी तूम्बी का तीर्थ स्नान :

इस अभिप्राय द्वारा बाह्यशुद्धि को गौण करके अन्तरंग शुद्धि पर बल दिया गया है। तीर्थ-स्थानों की नदियों में केवल स्नान कर लेने से आत्मा की कलुषता नहीं धुल जाती। ठीक वैसे ही जैसे कड़वी तूम्बी अनेक तीर्थजलों में नहा लेने के बाद भी मीठी नहीं हो पाती। उसका स्वभाव नहीं बदलता। पाण्डवों ने जब अपने बन्धु-बांधवों का वध करने के कारण तीर्थस्थानों की नदियों में नहाकर पवित्र होना चाहा तो श्रीकृष्ण ने कड़वी तूम्बी के उदाहरण द्वारा उन्हें प्रतिबोधित किया है।[28]

प्राकृत कथाओं में तूम्बी के उदाहरण द्वारा आत्मा के गुरुत्व और लघुत्व को भी दर्शाया गया है। कर्मसिद्धान्त की विवेचना की गयी है। जैसे कोई तूम्बी मिट्टी के लेप आदि के कारण भारी होकर पानी में नीचे डूब जाती है और मिट्टी गलकर छूट जाने पर पानी के ऊपर स्वतः आ जाती है, वैसे ही आत्मा कर्मों से युक्त होने पर अपकर्ष एवं कर्मरहित होने पर उत्कर्ष प्राप्त करती है।[29]

एक का अपकर्ष, दुसरे का उत्कर्ष :

यह अभिप्राय भारतीय कथा-साहित्य में अत्यन्त प्रचलित है। प्रायः प्रत्येक नैतिक या धार्मिक कथा में दो व्यक्तियों में से अशुभ कार्य करने वाले का अपकर्ष बताया गया है।[30] पालि कथाओं में अनेक इसके उदाहदण हैं।[31] प्राकृत कथाओं में यों तो नैतिक गुणों के अपकर्ष और उत्कर्ष के लिए कई बार यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है, किंतु दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से इस अभिप्राय का प्रयोग इन कथानकों में हुआ है:- विद्युत्माली और मेघमाली[32] जिनपाल और जिनरक्षित,[33] जिनदत्त और सागरदत्त,[34] दो कछुए[35] एवं स्थूलभद्र और सिंहगुफा प्रवासी मुनि,[36] आदि। विद्युत्माली विद्याधर द्वारा प्रदत्त मन्त्र-साधना में दृढ़ न रहने से दुःखी हुआ, मेघमाली दृढ़

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सकल्पी होने से सुखी। जिनरक्षित यक्षिणी की बातों में आ जाने से मृत्यु को प्राप्त हुआ, जिनपाल सकुशल लौटकर प्रव्रजित हो गया। एक कछुआ असंयमी होने से मारा गया, दूसरा संयमी होने से बच गया। सिंहगुफाप्रवासी मुनि मन चंचल होने से वेश्या को स्वीकारने को तत्पर हो गये, स्थूलभद्र उसके घर बारह वर्ष रहने पर भी दृढ़ रहे। इन सब कथानकों में साधना में दृढ़ रहने के लिए प्रेरित किया गया है। सम्यक्त्व में निःशंकित होने के लिए। अपकर्ष-उत्कर्ष से सम्बन्धित इस अभिप्राय के अत्यधिक प्रचलित होने के कारण ही दो जीवों के अपकर्ष एवं उत्कर्ष को दिखाने के लिए समराइच्चकहा जैसे विशाल ग्रन्थ का सृजन हो सका है, जिसमें नौ भवों तक गुणसेन और अग्निशर्मा के जीवों के अपकर्ष-उत्कर्ष की प्रक्रिया चालू रहती है।[39]

सत्य-परीक्षा :

सत्य परीक्षा अभिप्राय का तात्पर्य है किसी की व्रत, प्रतिज्ञा, संकल्प व शील आदि में दृढ़ता की परीक्षा करना। बहुत बार ऐसा होता है कि निरपराध व्यक्ति को षड्यन्त्र के द्वारा अपराधी घोषित कर दण्ड दिया जाने लगता है, तब उसके सत की परीक्षा की जाती है। प्राकृत कथाओं में इसके अनेक उदाहरण हैं, जिनमें विभिन्न उद्देश्यों से सत्य-परीक्षा की गयी है। सेठ सुदर्शन,[38] सुभद्रा,[39] सुलसा,[40] आसाढ़भूति[41] चूलिनीपिता[42] केसवकुमार,[43] नन्दिसेन,[44] श्रमणोपासक अरण्यक[45] आदि। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध कथाओं के अतिरिक्त परीक्षा का अभिप्राय (सच्चक्रिया) अन्य कथा-साहित्य में भी उपलब्ध होता है।[46]

वैराग्य प्राप्ति के निमित्तों की योजना :

यह अभिप्राय पालि-प्राकृत कथाओं में सर्वाधिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में गृहस्थ जीवन की अपेक्षा सन्यस्त जीवन को ही अधिक महत्व दिया गया है। अतः सांसारिक सुखों की अनित्यता प्रतिपादन कर जीवों के कल्याण के लिए उन्हें संसार से विमुख किया गया है। किसी धर्माचार्य द्वारा अपने-अपने धर्म में प्रव्रजित। वैराग्य प्राप्ति में अनेक कारणों को निमित्त बनाया गया है। श्वेत केश (Gray Hair) इन कारणों में सर्वाधिक प्रचलित है।[47] प्राकृत कथाओं में वैराग्य प्राप्ति के अन्य निमित्तों की भी योजना की गई है। यथा-इच्छा (गोविन्द वाचक), रोष (शिवभूति), दरिद्रता (लकड़हारा), अपमान (नंदिषेण), प्रतिशोध (रहैतार्य), पुत्रस्नेह (वज्रस्वामी)[48] कायाकी तुच्छता (भरत),[49] ध्वजदुर्गन्ध (दुर्मुख),[50] हिंसा (अरिष्टनेमि), पति की प्रव्रज्या (राजमति आदि अनेक) एवं आत्मग्लानि (अर्जुनमाली)[51] आदि।

व्रतों का पालन :

भारतीय कथाओं में यों तो व्रतों के माहात्म्य को प्रदर्शन करने वाले अनेक कथानक हैं। किन्तु किसी कथा विशेष के पात्रों व उनकी क्रियाओं को व्रतों के प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत करना प्राकृत-कथों की अपनी विशेषता है। ज्ञाताधर्मकथा में धन्ना सेठ और उसकी बहुओं की सुन्दर लोक कथा आयी है। श्वसुर अपनी चारों पुत्र वधुओं को धान के पांच-पांच दाने देता है। सबसे बड़ी वधु उज्झिका उन दानों को निरर्थक समझ कर फेंक देती है। दूसरी भोगवती उनका छिलका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उतार कर खा जाती हैं। तीसरी रक्षिका उन्हें सुरक्षित रूप से रख लेती है और चौथी बहू रोहिणी उन दानों को क्यारियों में बोकर सैकड़ों घड़े धान उत्पन्न करती है। श्वसुर अन्त में इसी को घर की स्वामिनी बना देता है।[52]

इस कथा में श्वसुर धर्माचार्य का प्रतीक है, चारों बहुएं चार मुनिओं की और धान के पाँच कण पाँच अणुव्रतों के। अणुव्रतों का तिरस्कार करने वाला गतियों के चक्कर लगाता है, उनमें विश्वास करने वाला सुख भोगता है और पालन करने वाला पुण्यबंध करता है। किन्तु जो स्वयं पालन करता हुआ उनके द्वारा दूसरों के कल्याण का भी प्रयत्न करना है, वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। आत्मा के सच्चे सुख का अधिष्ठाता।

तीन वणिक पुत्रों के कथानक द्वारा भी व्रतों के पालन पर जोर दिया गया है। एक सेठ तीन पुत्रों को बराबर-बराबर धन देकर व्यापार करने भेजता है। पहिला पुत्र अपने हिस्से से कई गुना अधिक कमाकर लाता है। दूसरा पुत्र ब्याज आदि के द्वारा मूल धन को सुरक्षित रखता है और तीसरा खाली हाथ घर लौटता है। जीव मनुष्य- जीवन की सम्पत्ति लेकर उत्पन्न होता है। कोई इसका उपयोग कर अपनी साधना द्वारा मोक्ष प्राप्त करना है, कोई सद्गुणों का पालन कर स्वर्गादि के सुख भोगता है और कोई सत्कर्म त्यागकर नरकादि में ठोकरें खाता-फिरता है।[53]

पूर्वभव :

भारतीय दर्शन शास्त्रियों ने सम्भवतः अपने चिन्तन का बहुभाग कर्मफल और पुनर्जन्म के प्रतिपादन में ही लगाया है। भारतीय साहित्य इससे भरा पड़ा है। पालि कथाओं में वर्तमान जीवन की व्याख्या द्वारा पूर्वभव का विश्लेषण किया गया है। जातक कथाओं में तो अतीतवत्थु ही बहुभाग घेरती हैं। प्राकृत कथाओं में पूर्वभव के वृतान्त द्वारा वर्तमान की एवं वर्तमान के द्वारा भावीभव की व्याख्या की गयी है। अतः इन कथाओं में पूर्वभव अभिप्राय अनायास ही महत्वपूर्ण हो गया है। क्योंकि दार्शनिक सिद्धान्तों के महत्व, शुभ-अशुभ कार्यों के परिणाम एवं महापुरुषों के आदर्शों को उपस्थित करने के लिए पूर्वभव वर्णन के सिवाय अन्य कोई उपयुक्त साधन नहीं था। विमानवत्थु पेतवत्थु, विपाकसूत्र एवं निरयावलि की कथाएं मुख्यतया उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती हैं।

विषयभोग वमन या विषफल :

पालि-प्राकृत कथाओं में सांसारिक सुखों को तुच्छ और क्षणिक स्वीकारा गया है। बन्धन का कारण भी। अतः अनेक घृणित वस्तुओं से विषयभोगों की तुलना की गयी है। वमन या विषफल की उपमाएं अधिक प्रचलित हैं। पालि कथाओं में सर्प का उदाहरण देकर समझाया गया है कि जैसे सर्प अपने उगले हुए वपित विष को पुनः नहीं खाता, बैसे ही साधक को एक बार परित्यक्त विषय-भोगों को पुनः नहीं अपनाना चाहिये।[54] प्राकृत कथाओं में राजमति ने रथनेमि को अपने वमन द्वारा[55] एवं नागला ने अपने दीक्षितपति भावदेव को पुत्र के वमन द्वारा[56] सांसारिक विषय-भोगों की अपवित्रता का उपदेश दे पुनः साधना में रत किया है।

विषफल अभिप्राय द्वारा विषय भोगों को प्राण घातक (मुक्ति में बाधक) कहा गया है। धन्ना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सार्थवाह अपने काफिले के साथ व्यापार के लिए निकला। रास्ते में भयंकर अटवी में प्रवेश करते ही उसने अपने साथियों को सुन्दर किन्तु विषयुक्त नन्दी फल खाने के लिए मना कर दिया। जिन लोगों ने सार्थवाह की इस सूचना को बकवास समझा उन्होंने विषाक्त नन्दी फल खा लिये। न खाने वाले व्यापार कर धन-सम्पत्ति के साथ वापिस घर आ गये। खाने वालों की जीवन-लीला वहीं समाप्त हो गयी।[57] फल जातक[58] में भी यही अभिप्राय प्रयुक्त है, किन्तु उसमें विषाक्त फल खाने वालों को वमन करा दिया गया है, जो विषयी पुरुषों को धर्माचार्य द्वारा साधना मार्ग में लगा देने का प्रतीक है।

परीषह सहन :

साधक के जीवन में उपसर्गों का आना उनको शान्त भाव से सहन करना यह अभिप्राय धार्मिक साहित्य में सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। पालि-प्राकृत कथाओं में अनेक तपस्वियों की कथाओं में यह बात देखने मिलती है। पालि-साहित्य में मार और भगवान बुद्ध के तो अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं, जिनमें मार को पराजित होना पड़ा है। जैन धर्म में साधक के जीवन में बाइस परीषहों को सहन करना आवश्यक बताया है। अतः प्राकृत कथाओं में ऐसे सहनशील अडिग साधकों के अनेक कथानक अपलब्ध होते हैं। उत्तराध्ययनटीका में सभी परीषहों को सहन करने वालों की स्वतन्त्र कथाएं हैं।[59]

आत्मा से सम्बद्ध अभिप्राय :

पालि कथाओं के जहाँ अनात्मवाद के प्रतिपादन के लिए कुछ प्रचलित अभिप्रायों का सहारा लिया गया है वहाँ प्राकृत कथाओं में आत्मवाद के स्थापन के लिए। लकड़- हारों के कथानक में लकड़ी में आग के उदाहरण द्वारा शरीर-प्रमाण आत्मा का, धन्ना सार्थवाह और विजय चोर के कथानक द्वारा शरीर और आत्मा की भिन्नता का तथा तुम्बी और मिट्टी के लेप आदि के द्वारा आत्मा और कर्मबन्धन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इन अभिप्रायों का बाद में भी कई कथाओं में प्रयोग हुआ है।

उक्त प्रमुख अध्यात्म-चिन्तन प्रधान अभिप्रायों के अतिरिक्त पालि-प्राकृत कथाओं में अन्य ऐसे फुटकर अभिप्रायों का प्रयोग भी हुआ है जो प्रकारान्तर से किसी न किसी दार्शनिक पक्ष को उद्घाटित करते हैं। उपर्युक्त अभिप्रायों के इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि पालि-प्राकृत कथाओं के सभी अभिप्रायों का तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय तो भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष उजागर तो होंगे ही, भारतीय कथाओं का मूल्यांकन भी उनकी समृद्धता की समकक्षता पर हो सकेगा। और यह अनुसन्धान के क्षेत्र में एक ऐसा कार्य होगा, जिसकी अनिवार्यता कथा-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के लिए अक्षुण्ण होगी।

सन्दर्भ

1. 'आजकल' मई 1954, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ. 10।
2. पृथ्वीराजरासो में कथानक रूढ़ियां - डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव पृ. 54।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लोकसाहित्य विज्ञान - डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 273।
4. वाइज अवेक स्टोरीज में दिये गये नोट्स।
5. ओसन आफ स्टोरीज् भाग-1-10।
6. 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटेरेचर' में 'मोटिफ' शब्द।
7. "They see the qualities of their own nature as common also to the animal world." - Primitive Art P.56, dy Leonard Adam.
8. विशेष के लिए देखें - 'पृथ्वीराजरासो में कथानक-रूढ़ियां' पृ. 57।
9. महाभारत 21.5।
10. भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र।
11. कुवलयमालाकहा, 88-90।
12. ई. कुह- "Festgruss n ao.v. Bohtilgk stuttgart" pp.68-76.
13. 'हिस्टरी औंव इण्डियन लिटरेचर' भाग 2, पृ. 125।
14. उक्त जातकों के अभिप्राय जातक (6 भाग), अनु.-भदन्त आनन्द कोत्सल्यायन, से खोजे गये हैं।
15. विनय पिटक (हि. अनु.) पृ. 201-202।
16. कुवलयमाला कहा, 88.90
17. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ. 7।
18. सूत्रकृतांग, द्वितीय खण्ड का प्रथम अध्ययन।
19. विशेष के लिए देखें - इस पुस्तक का अंतिम लेख। 20. समराइच्चकहा, दूसरा भव।
21. प्राकृत साहित्य का इतिहास - डॉ.जगदीश चन्द्र, पृ. 398।
22. उपदेशपद, गाथा 8।
23. देखें - लेखक का 'सर्षपदाना अभिप्राय की लोक - यात्रा' नामक लेख।
24. उपसालहक जातक (166), 2.201।
25. चोल्लक, पाशक द्यत, रत्न, स्वप्न, चक्र, चर्म, यूप, और परमाणु के दृष्टान्त
- उत्तराध्ययन टीका, तृतीय अध्ययन।
26. दशवैकालिकटीका, हरिभद्र गा. 37।
27. हरिभद्र के प्रा. क. सा. आ. परि., पृ. 286।
28. जैन कहानियां भाग 2, पृ. 67।
29. भगवान महावीर वी बोधकथाएं पृष्ठ 46 में उद्धृत।
30. व्रज लोक साहित्य का अध्ययन - डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 463।
31. जातक (हिन्दी अनु.) भाग 1 में 1, 3, 11, 15-16 एवं भाग 3 में 298, आदि नम्बर के जातक।
32. जैन कहानियां भाग 6, पृ. 56।
33. ज्ञाताधर्मकथा श्रु. 1, अ. 9।
34. वही, श्रु. 1, अ. 4।
35. वही, अ. 1, अ. 4।
36. जैन कहानियाँ भाग 3, पृ. 47।
37. हरिभद्र के प्राकृत कथा - साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
38. जैन कहानियां भाग 7।
39. वही, भाग 3 पृ. 67।
40. वही, भाग, 4 पृ. 20।
41. जैन कहानियां भाग दो, पृ. 54।
42. वही, पृ. 60
43. वही, भाग 10, पृ. 45।
44. वही, पृ. 34।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

45. वही, भाग 4 पृ. 40।
46. 'सच्चक्रिया' (जरनल ऑव द रायल एशियाटिक सोसायटी. जुलाई 1917, पृ. 427-467)
47. आवश्यकचूर्णि 2, पृ. 2027, मातृदेव जातक (9) सोम जातक (525), निमि जातक (541), 'ग्रे हेयर मोटिफ' ओरियन्टल जर्नल, भा. 36 पृ. 54-86।,
48. 'जैनागम साहित्य में भारतीय समाज' पृ. 382 49. उत्तराध्ययनटीका 18, 233।
50. वही, 9. पृ. 133।
51. अन्तकृद्दशाग व. 6 अ.3, जैनागम निदेर्शिका पृ. 492।
52. नायाधम्मकहा, 7, कुछ रूपान्तर के साथ मूलसर्वास्तिवाद में तथा बाइबिल (सैन्ट मैथ्यू की सुवार्ता 25) में भी यह कहानी प्राप्त होती है। - दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां पृ. 7।
53. उत्तराध्ययन 7, 14-15।
54. विषवन्त जातक (69) 1.402।
55. उत्तराध्ययनटीका, पृ. 27-82।
56. जैन कहानियां भाग 2।
57. ज्ञाताधर्मकथा, 15।
58. फल जातक (54) 1.351।
59. उत्तराध्ययन सुखबोधा टीका, गा. 3-45।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादश

धर्मपरीक्षा-अभिप्राय की परम्परा

आठवीं शताब्दी के प्राकृत के सशक्त कथाकार-उद्द्योतनसूरि ने कुवलयमालाकहा में काव्य और दर्शन का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन को प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अनेक दृष्टान्तों, कथाओं, प्रतीकों और अभिप्रायों का प्रयोग किया है। समुद्र में नौका का भग्न होना, धार्मिक आचार्य द्वारा पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त सुनाना, संसार की असारता देखकर वैराग्य प्राप्त करना, धार्मिक पटचित्र का प्रदर्शन, अन्य धार्मिक विचार-धाराओं में जैनधर्म की श्रेष्टता प्रतिपादित करना आदि कुवलयमाला के धार्मिक अभिप्राय हैं। यद्यपि ये अभिप्राय प्रारम्भ से ही प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु उद्द्योतनसूरि ने उन्हें नये रूपों में प्रस्तुत किया है।

अन्य धार्मिक मान्यताओं की तुलना में जैनधर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना, धर्मपरीक्षा के नाम से जाना गया है। इसके मूल में दूसरे के दोषों को दिखाते हुए अपने गुणों को प्रगट करना रहा है। अन्य धार्मिक मतों में जो अन्ध-विश्वास, पाखण्ड तथा अतिशयोक्तिपूर्ण बातों का समावेश हो गया है उनका खण्डन करते हुए अपने धर्म की सार्वभौमिकता तथा प्रामाणिकता का प्रतिपादन ही धर्मपरीक्षा है। इस मूल भावना को लेकर प्राचीन भारतीय साहित्य में कई रचनाएं विभिन्न भाषाओं में लिखी गयी हैं। प्रो. वेलणकर[1] एवं डॉ. ए.एन्. उपाध्ये[2] ने अपने निबन्धों में धर्मपरीक्षा सम्बन्धी साहित्य का परिचय दिया है। लोक साहित्य में भी इसके अनेक उदाहरण प्राप्त हैं। डिक्शनरी ऑफ फोकलोर में परीक्षा सम्बन्धी अनेक मोटिफ वर्णित हैं, जिनका सम्बन्ध धर्म-परीक्षा से भी है।

उद्द्योतनसूरि ने राजा दृढ़वर्मन् की दीक्षा के पूर्व धर्मपरीक्षा के अभिप्राय का प्रयोग किया है। दृढ़वर्मन् किसी अच्छे धर्म में दीक्षित होने के लिए पहले अपनी कुलदेवी की आराधना करता है। कुलदेवी प्रगट होकर उसे एक पट्ट में धर्म का स्वरूप लिखकर देती है। राजा उस धर्म के स्वरूप की जांच करने के लिए नगर के सभी धार्मिक आचार्यों को आमन्त्रित करता है। 33 आचार्य वहाँ एकत्र होते हैं। वे अपने-अपने धर्म का स्वरूप कहते हैं। राजा प्रत्येक के धर्म को सुनकर उसकी अच्छाई-बुराई की समीक्षा करता जाता है। अन्त में अर्हत् धर्म के स्वरूप को सुनकर उसे सन्तोष होता है। क्योंकि कुलदेवी ने भी वही धर्म उसे लिखकर दिया था, मुक्ति प्राप्ति का यही धर्म उसे ठीक लगता है।[3]

इस धर्म-परीक्षा के प्रसंग में कई बातें विचारणीय हैं। आठवीं शताब्दी में इतने मत-मतान्तर धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विद्यमान थे, जिनका उल्लेख कुव. में हुआ है। इन 33 आचार्यों की विचार-धाराओं के आधार पर कहा जा सकता है कि उनमें से अद्वैतवादी, सद्वैतवादी, कापालिक, आत्मबधिक, पर्वतपतनक, गुग्गुलधारक, पार्थिव-पूजक, कारुणिक एवं दुष्ट-जीव संहारक ये नौ आचाय शैवमत को मानने वाले थे। एकात्मवादी, पशुयज्ञ-समर्थक, अग्निहोत्रवादी, बानप्रस्थ, वर्णवादी एवं ध्यानवादी ये छह वैदिक धर्म के आचार्य थे। दानवादी, पूतधार्मिक,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिपूजक, विनयवादी, पुरोहित, ईश्वरवादी तथा तीर्थ-वन्दना के समर्थक ये सात आचार्य पौराणिक धर्म का प्रचार करने वाले थे। इनके अतिरिक्त बौद्ध, चार्वाक, सांख्य, योग-दर्शन के आचार्य थे। कुछ स्वतन्त्र विचारक थे। यथा- आजीवक सम्प्रदाय के पंडरभिक्षुक एवं नियतवादी, भागवत-सम्प्रदाय के चित्रशिखण्डी, अज्ञानवादी, एवं मूढपरम्परावादी। इन सभी आचार्यों के मतों की तुलनात्मक समीक्षा यहाँ अपेक्षित नहीं है।[4] किन्तु यह विचारणीय है कि कुव. का यह धर्म-परीक्षा का विवरण लोक-मानस की किस मूल भावना का विकास है तथा इसने उत्तरवर्ती धर्म-परीक्षा सम्बन्धी साहित्य को कितना प्रभावित किया है ?

धर्म-परीक्षा का यह प्रसंग इतने विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने वाले उद्द्योतनसूरि पहले आचार्य हैं। उनके पूर्व तथा बाद में भी इतने धार्मिक मतों का एक साथ मूल्यांकन किसी एक ग्रन्थ में नहीं किया गया है। यद्यपि इस तुलनात्मक दृष्टिकोण को लेकर कई कथाएं भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं। एक की तुलना में दूसरे को श्रेष्ठ बताना, यह धर्मपरीक्षा की मूल भावना है, जिसका अस्तित्व शास्त्रीय और लोक-साहित्य दोनो में प्राचीन युग से पाया जाता है।

वैदिक युग के साहित्य में कथाओं के स्थान पर देवताओं का वर्णन अधिक उपलब्ध है। उसमें हम पाते हैं कि कभी इन्द्र श्रेष्ठ होता है तो कभी विष्णु। कभी वरुण को प्रधानता मिलती है तो कभी रुद्र को।[5] यह इसलिए हुआ है कि जब इन देवताओं की विशेषताओं को तुलना की दृष्टि से देखा गया तो तत्कालीन मानव को जिसके गुण अधिक उपयोगी लगे उसे प्रधानता दे दी गयी। यह एक प्रकार की धर्मपरीक्षा के स्थान पर गुण- परीक्षा थी, जिसने आगे चलकर भारतीय साहित्य में अपने रूप का विकास किया है।

जातक साहित्य में भी परीक्षा सम्बन्धी अनेक कथाएं हैं। कहीं सत् की परीक्षा की जाती है तो कहीं शुद्धता की, कहीं ईमानदारी की, तो कहीं गुणों की। गुणों की परीक्षा ही वास्तव में धर्म-परीक्षा का आधार है। राजोवाद जातक गुण-परीक्षा का श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें दो राजाओं के गुणों की परीक्षा उनके सारथी करते हैं। दोनों राजा बल, आयु, सौन्दर्य एवं वैभव में समान हैं, किन्तु उनके चिन्तन में थोड़ा-सा अन्तर है। एक राजा शठता को शठता से जीतता है। जैसे के साथ तैसा व्यवहार। जबकि दूसरा राजा बुराई को भलाई से जीतता है।[6] यह कथा धर्म-परीक्षा के ठीक अनुरूप बैठती है। दो आचार्य धर्म की श्रेष्ठता की परीक्षा करते हैं। जिस धर्म में साध्य (मोक्ष) की भांति उसके साधन (सदाचार) भी श्रेष्ठ हैं, वही धर्म उत्तम कहा जाता है। यही प्रयत्न प्राकृत-साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है।

श्रेष्ठता की पहिचान करने वाली अनेक कथाएँ प्राकृत-साहित्य में हैं।[7] प्रवृत्ति से निवृत्ति मार्ग की भाग्य से पुरुषार्थ की तथा लक्ष्मी से सरस्वती की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने वाली कथाओं की भारतीय साहित्य में कमी नहीं है।[8] अकेले जम्बु स्वामी का चरित्र असत् से सत् की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।[9] ज्ञाताधर्मकथा में पांच धान्यकणों की कथा केवल चार बहुओं मो चौथी बहु की श्रेष्टता को ही प्रमाणित नहीं करती, अपितु प्रतीकों के अनुसार अन्य व्रतों में अहिंसा की श्रेष्टता स्थापित करती है। कथाओं का नायक गुणों की खान एवं खलनायक दोषों का पुंज, यह मिथक इसी गुण-परीक्षा अथवा धर्म-परीक्षा के कारण ही विकसित हुआ है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है समराइच्चकहा का सम्पूर्ण कथानक। गुणशर्मा और अग्निशर्मा के नौ जन्मों की कथा।[10] राम और रावण, बोधिसत्व और मार, जिनेन्द्र और मदन[11] आदि पात्रों की यह योजना एक की अपेक्षा से दूसरे को श्रेष्ठ प्रमाणित करने की मूल

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावना का ही विकास है।

धर्म-परीक्षा अभिप्राय के विकसित होने में दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व तर्क-पद्धति का क्रमशः विकसित होना है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के अनेक एकान्तवादी चिन्तकों के बीच से महावीर के चिन्तन का उभरना सत्य की श्रेष्ठतम पहचान का प्रमाण है।[12] ब्रह्मजालसुत्त में अनेक मत-मतान्तरों के प्रचलित होने का उल्लेख सत्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से परखने का परिचायक है।[13] सूत्रकृतांग में अक्रियावाद, अज्ञानवाद, क्रियावाद आदि मतों की समीक्षा की गयी है।[14] प्रश्नव्याकरणसूत्र में अहिंसा आदि पांच व्रतों के विवेचन के प्रसंग में सत्य का निरूपण करते हुए विभिन्न दार्शनिकों के मतों को असत्य कहा गया है।[15] यह तर्क-पद्धति दार्शनिक मतों से सम्बन्धित थी। जब कभी किसी जैन ग्रन्थ में अन्य मतों का खण्डन करना होता था तो प्रायः इसी प्रकार की एक प्रणाली अपनायी जाती थी। और उन सभी जैनेतर मतों की समीक्षा कर दी जाती थी, जो दार्शनिक क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। भले ही उनका अस्तित्व ग्रन्थकार के युग में हो अथवा नहीं। अतः कुवलयमाला में जिन प्रसिद्ध दार्शनिक मतों की परीक्षा की गयी है, वह परम्परा से अधिक प्रभावित है। किन्तु प्रत्येक धर्म के जिन अन्य अन्धविश्वासों व पाखण्डों का खण्डन उद्द्योतन ने किया है, वे सम्भवतः आठवीं शताब्दी में विद्यमान थे।

धर्मपरीक्षा अभिप्राय के विकास में तीसरा महत्त्वपूर्ण आधार पौराणिक एवं कल्पित बातों पर जैनाचार्यों द्वारा व्यंग करने की प्रवृत्ति है। इसका प्रारम्भ सम्भवतः विमलसूरि के पउमचरिउ से हुआ है। तत्कालीन प्रचलित रामकथा में विमलसूरि को अनेक बातें विपरीत, अविश्वसनीय तथा कल्पित प्रतीत हुईं। अतः उन्होंने नयी रामकथा लिखी।[16] काव्य में दार्शनिक तथ्यों के प्रति चिन्तन का यह प्रारम्भ था। बुद्धघोष ने अपने ग्रन्थों में इसे विस्तार से स्थापित किया। गुप्तयुग के कवियों ने अपने ग्रन्थों में कहीं न कहीं दार्शनिक खण्डन-मण्डन को स्थान देना अनिवार्य मान लिया था। आगे चलकर यह एक काव्यरूढ़ि हो गयी, जिसका प्रभाव धर्मपरीक्षा के स्वरूप पर पड़ा है।

अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू ने भी जैनेतर मान्यताओं का खण्ड़न किया है तथा अपना काव्य प्रचलित रामकथा की पौराणिक व अतिशयोक्तिपूर्ण बातों से बचाकर लिखने की प्रतिज्ञा की है।[17] किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश के कवियों की इस प्रकार की प्रतिज्ञाओं और उनके काव्यों को एक साथ देखने पर स्पष्ट है कि जिन अलौकिक बातों से वे बचना चाहते थे, उनके काव्य उनसे अछूते नहीं है।[18] अन्तर केवल यह है कि जैनेतर ग्रन्थों के पात्र जिन कार्यों को करते थे वे ही कार्य अब उन पात्रों के द्वारा कराये जा रहे हैं जिन्हें कवि ने जैन बना दिया है। अतः मतान्तरों में व्याप्त पाखण्ड के प्रति जो व्यंग विमलसूरि ने प्रारम्भ किया था, वह अधिक तीव्र नहीं हुआ। कारण इसके कुछ भी रहे हों।

किन्तु ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी में पुनः धर्म-दर्शन के क्षेत्र में परीक्षण को प्रधानता दी जाने लगी। बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थों में अनेक दार्शनिक आचार्यों के मतों का परिचय दिया है।[19] हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम के प्रसंग में उन्नीस सम्प्रदायों के आचार्यों का नामोल्लेख है। उनके कार्यों से ज्ञात होता है कि वे अपने मतों के प्रति संशय, निश्चय करते हुए व्युत्पादन भी करते थे। किसी एक सिद्धान्त को केन्द्र में रखकर अन्य के साथ उसकी तुलनाकर फिर शास्त्रार्थ के लिए प्रवृत्त होते थे।[20] अतः अन्य मतों की समीक्षा कर किसी एक मत को श्रेष्ठ बतलाना, इस युग के साहित्यकार के लिए एक परम्परा होने लगी थी। इसी का निर्वाह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनाचार्यों ने किया है।

हरिभद्रसूरि ने धर्म-परीक्षा को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने असत्य के परिहार के लिए व्यंग को माध्यम चुना। उनके धूर्ताख्यान नामक ग्रन्थ में पुराणों में वर्णित असम्भव और असंगत मान्यताओं का निराकरण पांच धूर्तों की कथाओं द्वारा किया गया है।[21] हरिभद्र द्वारा जैनेतर मतों पर किया गया यह व्यंग ध्वंसात्मक नहीं है, अपितु असंगत बातों के परिहार के लिए सुझाव के रूप में है। सम्भवतः धूर्ताख्यान का यह व्यंग हिन्दू पुराणों के साथ-साथ जैनपुराणों की भी उन अविश्वनीय बातों के प्रति था, जिनका मेल जैनधर्म से नहीं था। सत्य (धर्म) के दोषों की परीक्षा करने की यह एक पद्धति थी, जिसने धर्म-परीक्षा अभिप्राय को गति प्रदान की।

जैनाचार्यों द्वारा धर्मपरीक्षा अभिप्राय को अपनाने का प्रमुख कारण था-जैन धर्म के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित बनाये रखना। अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा, स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा मुक्ति प्राप्ति का प्रयत्न, जीव और अजीव के बन्धन-मुक्ति की नैसर्गिक-प्रक्रिया तथा ध्यान और तप की साधना की अनिवार्यता आदि कुछ जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तों के विरोध में जो भी सम्प्रदाय व धर्म आता था, उसका खण्डन करना जैन आचार्यों के लिए आवश्यक था। इसके लिए उन्होंने कई माध्यम चुने, जिनमें धर्मपरीक्षा प्रमुख था। उद्द्योतनसूरि ने धूर्ताख्यान के व्यंग के स्थान में एक खुली चर्चा को ही प्रधानता दी। एक साथ सभी आचार्यों की उपस्थिति में उन्होंने धर्म की श्रेष्ठता पर विचार करना उपयुक्त समझा। आठवीं शताब्दी में विश्वविद्यालयों के विकास के कारण सम्भव है, धार्मिक विद्वानों का इस प्रकार का सम्मेलन भी होने लगा हो।

धार्मिक आचार्यों द्वारा धर्म का स्वरूप सुनकर राजा का दीक्षित होना भारतीय साहित्य में एक काव्यरूढ़ि है। आचार्यों का स्थान कहीं मन्त्री ले लेते हैं तो कहीं पुरोहित। बौद्ध साहित्य में उल्लेख है कि अजातशत्रु ने धर्म का सही स्वरूप जानने के लिए अपने मन्त्रियों से धर्म सुना था। बौद्ध होने के नाते उसने बौद्ध मतावलम्बी मन्त्री के कथन को प्रधानता दी थी। पुष्पदन्त के महापुराण में राजा महाबलि के चार मन्त्रिओं ने क्रमशः उन्हें चार्वाक, बौद्ध, वेदान्त तथा जैनधर्म का स्वरूप कहकर सुनाया था। अतः कुवलयमालाकहा का धर्म-परीक्षा सम्बधी यह प्रसंग विषयवस्तु एवं स्वरूप की दृष्टि से पूर्ववर्ती लोक-परम्परा पर आधारित है। किन्तु एक साथ इतने अधिक मतों की समीक्षा प्रस्तुत करना इसकी विशेषता है।

उद्द्योतनसूरि के बाद प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में धर्मपरीक्षा नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखे जाने लगे। उद्द्योतन के लगभग दो सौ वर्षों बाद अपभ्रंश में हरिषेण ने 988 ई. में धम्मपरीक्खा लिखी। और इसके 26 वर्ष बाद ई. सन् 1014 में अमतिगति ने संस्कृत में धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना की। इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन विद्वानों ने प्रस्तुत किया है।[22] उससे ज्ञात होता है कि ये दोनों ग्रन्थ प्राकृत में जयराम द्वारा लिखित धम्मपरीक्खा पर आधारित हैं।[23] यद्यपि उनपर प्राकृत की उपर्युक्त रचनाओं का प्रभाव भी हो सकता है। जयराम की धम्मपरिक्खा आज उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः यह उद्द्योतनसूरी के बाद और हरिषेण के पूर्व किसी समय में लिखी गयी होगी। इससे इतना तो स्पष्ट है कि 8 वीं से 11 वीं शताब्दी का समय धार्मिक क्षेत्र में खण्डन-मण्डन और तर्कणा का था, जिसमें जैनधर्म के मौलिक स्वरूप को बचाये रखने का प्रयत्न इन धर्म-परीक्षाओं ने किया है। सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू में इसका विस्तृत वितरण प्राप्त होता है।[24] किन्तु यह कार्य दार्शनिक स्तर पर ही हो सका है। सामाजिक स्तर पर तो जैनधर्म अन्य धर्मों की विशेषताओं के साथ बहुत प्रभावित हो गया था,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसकी प्रतिक्रिया श्रावकाचार ग्रन्थों के रूप में प्रगट हुई है।[25]

धार्मिक खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति 8वीं- 10 वीं शताब्दी में इतनी बढ़ी कि अपभ्रंश के मुक्तक कवि पारवण्डों पर सीधा प्रहार करने लगे। धर्म-परीक्षा के इन कवियों ने भी पौराणिक धर्म पर तीव्र प्रहार किया। धूर्ताख्यान का संतुलित व्यंग इन रचनाओं में दूसरा रूप ले लेता है। उसमें कुवलयमालाकहा की यह भावना नहीं है, जहाँ राजा सभी आचार्यों के मत की समीक्षा कर अन्त में उन्हें सम्मान पूर्वक बिदा करता है तथा अपने-अपने धर्म में संलग्न रहने की स्वतन्त्रता देता है।[26] इसके बाद में 17 वीं शताब्दी तक विभिन्न भाषाओं में धर्म-परीक्षा ग्रन्थ लिखे जाते रहे है जो प्रचार-ग्रन्थ अधिक हैं, काव्य-ग्रन्थ कम। किन्तु इन ग्रन्थों से सत्य को तुलनात्मक दृष्टि से परखने की पद्धति का अवश्य विकास हुआ है, जो वर्तमान अनुसंधान के क्षेत्र में भी अपनायी जाती है।

सन्दर्भ

1. प्रो.एच. डी. वेलणकर, जिनरत्नकोश, भूमिका, पूना, 1543
2. उपाध्ये,एनल्स ऑफ द भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट,रजत-जयन्ती अंक भाग 23, 1942
3. कुवलयमालाकहा, पृ. 204-207
4. प्रेम सुमन जैन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, वैशाली, 1975
5. मेक्डोनेल, वैदिक माईथॉलाजी
6. भदन्त आनन्द कोत्सल्यायन, जातक, भाग, 21251
7. जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, 1971
8. पेन्जर, द ओशन ऑफ स्टोरी: कथासरित्सागर
9. विमल प्रकाश जैन, जम्बूसामिचरिउ, भूमिका
10. नेमिचन्द्र शास्त्री, हरिभद्र की प्राकृत कथाओं का आलोचनात्मक परिशीलन
11. हीरालाल जैन, भदणपराजयचरिउ
12. देवेन्द्रमुनि, भगवान् महावीर: एक अनुशीलन।
13. द्रष्टव्य-सुत्तनिपात, समियसुत्त
14. सूत्रकृतांगवृत्ति 1.12
15. मुनि हेमचन्द्र, प्रश्नव्याकरणसूत्र, द्वितीय अध्ययन
16. जेकोबी, पउमचरियं, प्रथम भाग
17. संकटाप्रसाद उपाध्याय, कवि स्वयम्भु
18. देवेन्द्र कुमार जैन, अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृ.282-90
19. अग्रवाल, कादम्बरी-एक सांस्कृतिक अध्ययन
20. अग्रवाल, हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 197
21. धूर्ताख्यान- इण्ट्रोडक्शन
22. उपाध्ये, भ.ओ. रि.इ. एनल्स भाग 23, 1942 तथा द जैन एण्टीक्वेरी, भाग - 9, पृ. 21
23. जा जयरामें आसि विरइय गाह पंबंधि। सा हम्मि धम्मपरिक्ख सा पद्धडिय बंधि।। - घ.प. ह. 101
24. हण्डिकी, यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर पृ. 329-360
25. कैलाशचन्द्र शास्त्री, उपासकाध्ययन, भूमिका
26. 'बच्चह तुब्भे, करेह णियय-धम्म-कम्म-किरया-कलावे।' कुव. 207-9
27. राइस, कन्नरीज लिटरेचर पृ. 37 एवं
    विन्टरनित्स हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग 2, पृ.561

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदश

मधुबिन्दु अभिप्राय का विकास

कथा-कहानी का स्थान भारतीय साहित्य में सबसे पुरातन है। मनोविनोद और ज्ञानवर्द्धन का जितना सुगम और उपयुक्त साधन कथा है, उतनी साहित्य की अन्य कोई विधा नहीं। कथा-साहित्य की इसी सार्वजनीन लोकप्रियता के कारण प्रत्येक भारतीय-चिंतक व युगप्रवर्तक ने धार्मिक-आचार, आध्यात्मिक तत्वचिन्तन तथा नीति और कर्तव्य का उपदेश कथाओं के माध्यम से दिया है। प्राकृत कथा-साहित्य इस अर्थ में पर्याप्त समृद्ध है। जीवन-दर्शन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति इन कथाओं के माध्ययम से हुई है।

प्राकृत कथाओं में ऐसे अनेक अभिप्राय प्रयुक्त हुए हैं, जिन्होंने किसी चिरन्तन सत्य के उद्घाटक होने के कारण विश्वजनीन प्रसिद्धि प्राप्त की है। मधुबिन्दु अभिप्राय उनमें से एक है। इस अभिप्राय विशेष के अध्ययन के पूर्व स्वयं अभिप्राय पर विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि भारतीय कथा-साहित्य के अध्येतों द्वारा मौलिक रूप से इस क्षेत्र में चिन्तन बहुत कम हुआ है।

अभिप्राय-अध्ययन :

कथाओं में निहित अभिप्रायों का संग्रह कर उनके उत्स का पता लगाना ही कथ्य को दृदयंगम करने का सही रास्ता है। अभिप्राय कथा का अपरिवर्तनीय अग है। कथा की शैली, कथानक-संगठन, भाषण आदि में क्रमशः देशगत व कालगत परिवर्तन होते रहते है। किन्तु सुदीर्घ परम्परा के बाद भी कथा का अभिप्राय (motif) नहीं बदलता। मानव-मन की अज्ञात और अप्राप्त के प्रति तीव्र जिज्ञासा ने ही अनेक अभिप्रायों का निर्माण किया है, जिनका सम्बन्ध धर्म, दर्शन और नैतिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है और जो कथा के सांस्कृतिक आधार के प्रतिरूप होते हैं। अतः अभिप्राय-अध्ययन द्वारा न केवल कथाओं के हार्द तक पहुँचा जा सकता है, अपितु मानवीय मूलवृत्तियों की विकसित-परम्परा का भी ज्ञान होता है तथा विश्व की कथाओं की एकता का दर्शन।

अभिप्राय (motif) शब्द का प्रयोग पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक अर्थों में किया है। टेम्पल, पेंजर, वेरियर एलविन आदि विद्वानों ने कथा की किसी घटना विशेष या परिणाम को अभिप्राय कहा है।[1] इसी का अनुकरण अधिकांश भारतीय विद्वानों द्वारा हुआ है। किन्तु घटना और परिणाम या विचार अभिप्राय नहीं कहे जा सकते। क्योंकि परिस्थिति अनुसार एक कथा में अनेक घटनायें, विचार और परिणाम हो सकते हैं, किन्तु परम्परा में सभी का स्थिर रहना जरूरी नहीं है और न ही सभी कथा के अन्तरंग के संवाहक होते हैं। अतः मात्र घटनाओं और विचारो की पुनरावृत्ति को अभिप्राय मानने की अपेक्षा उनके जनक को अभिप्राय मानना अधिक युक्ति-संगत होगा। इस प्रकार मानव-जीवन की जो सुख और दुःख से संयुक्त शाश्वत कथा है, उसके संवाहक भाव को अभिप्राय कहा जा सकता है। भले हम उसे किसी नाम से पुकारें। इस सन्दर्भ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में मन्धुबिन्दु अभिप्राय उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है।

अर्थवत्ता :

मधुबिन्दु अभिप्राय की अर्थवत्ता सांसारिक-जीवन के यथार्थ-दर्शन से सम्बन्धित है। जहाँ कहीं भी यह दृष्टांत प्रयुक्त हुआ है, मूल रूप में वहाँ सांसारिक दुःख और सुख को यथावत् उद्घाटित किया गया है। वैसे यह अभिप्राय आध्यात्मचिंतन से अधिक सम्प्रक्त लगता है, किन्तु मूलरूप में इसका सम्बन्ध मानवीय असद् प्रवृत्ति से जुड़ा हुआ है। मानव जीवन का उत्थान-पत्तन सद्-असद् मूलवृत्तियों की प्रकाशन-स्थिति पर आधारित है। इस अभिप्राय द्वारा तृष्णा असद्वृति उभर कर सामने आई है, माया, आसक्ति आदि जिसके अपर नाम हैं। संसार-भ्रमण का मूल कारण तृष्णा है, इस बात को प्रायः सभी भारतीय-दर्शनों ने स्वीकार किया है। तृष्णा के वशीभूत होकर जीव मोह का बन्ध करता है और वास्तविक दुःखों के न गितना हुआ क्षणिक सुख में फंसा रहता है। प्रस्तुत अभिप्राय 'संसार में दुखों की अनन्त राशियों में सुख राई के एक कण के बराबर हैं' इस सत्य को अजागर करता है तथा संसार-संकटों से छूटने के प्रयत्न जैसी सद्वृति पर तृष्णा असद्वृति के दबाव का प्रदर्शन भी।

मधुबिन्दु अभिप्राय की मूल कथा से उसकी अर्थवत्ता स्पष्ट होती है। प्राकृत कथाओं में इस अभिप्राय का प्रारम्भि रूप इस प्रकार है:-

अनेक देशों में विचरण करने वाला कोई पुरूष सार्थ से विलग होकर वन में प्रविष्ट हुआ और चोरों के द्वारा लूट लिया गया। वह अकेला पुरुष पथभ्रष्ट होकर इधर- उधर घूम रहा था। एक मदोन्मत्त वनहस्ति ने उसका पीछा किया। उस पुरुष ने भागते हुए तृण-लताओं से आच्छादित एक पुराने कुंए को देखा। कुंए के तट पर विशाल बट का एक वृक्ष था। उसकी शाखाओं से जटाएं कुंए में प्रवृष्ट थीं। वह भयातुर पुरुष प्ररोह को पकड़कर कुंए में लटक गया। नीचे देखने पर उसे दिखाई दिया कि महाकाल के सदृश एक अजगर मुंह फाड़े उसे खाने के लिए तैयार है। उस पुरुष ने तिरछे देखा कि कुंए की दवालों पर चारों ओर चार भीषण सर्प उसे खाने के लिए स्थित हैं। प्ररोह के ऊपरीभाग को दो काले और सफेद चूहे काट रहे हैं। हाथी ने आकर अपनी सुंड से उस वृक्ष को हिलाया। उस वृक्ष पर मधुमक्खियों का एक बड़ा छत्ता था। वृक्ष हिलने से मधुमक्खियां उड़ीं और उस पुरुष के शरीर से चिपक कर काटने लगीं। तभी उस छत्ते से मधुघकी एक बिन्दु उस पुरूष के मुख में गिरी। वह उसका आस्वाद लेने लगा।

इस कथानक में पुरुष संसारी जीव है, सघन वन जन्म-जरा-रोग मरण से संश्लिष्ट संसार। वनहस्थी मृत्यु है, कुंआ मनुष्य-जन्म तथा देवगति, अजगर तिर्यन्च और नरक गति का प्रतीक है, चार सर्प दुर्गतियों में ले जाने वाले क्रोध मान-माया-लोभ चार कषाय हैं। प्ररोह जीवन-आयु है और श्वेत कृष्ण मूषक दिन-रात हैं, जो निरन्तर आयु को क्षीण करते हैं। वृक्ष कर्मबन्धन का कारण, अज्ञान व मिथ्यात्व का प्रतीक है। मधु का बिन्दु पांचों इन्द्रियों का सुख है, तथा मधुमक्खियां शरीर में होनेवाली व्याधियां हैं।[2]

उत्स :

मधुबिन्दु अभिप्राय का प्रयोग संसार-दर्शन के लिए सर्वप्रथम कब किया गया तथा इसका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रारंभिक स्वरूप क्या था, इस पर किसी ने विचार किया है, यह ज्ञात नहीं। विन्टरनित्स ने हिस्ट्री आफ इन्डियन लिटरेचर के प्रथम भाग पृ.40 में इसके विषय में थोड़ी चर्चा की है। उन्होने ई. कुह के इस मत का खण्डन करते हुए कि यह दृष्टान्त मूलरूप से बौद्ध धर्म का है, इसे जैन एवं अन्य भारतीय आध्यात्मिक विचारधाराओं से सम्बन्धित माना है।[3] यह हो सकता है कि दृष्टान्त का बौद्धरूप ही सर्व प्रथम पाश्चात्य-साहित्य में प्रविष्ट हुआ हो। इससे स्पष्ट है कि मधुबिन्दु दृष्टान्त बौद्ध और जैन साहित्य की रचना के पूर्व ही भारतीय साहित्य में विद्यमान था।

विन्तरनित्स ने इसी जगह एक सूचना यह भी दी है कि जर्मन विद्वान् इ. कुह ने विश्वसाहित्य का अध्ययन कर इस दृष्टान्त के सन्दर्भ खेजने का प्रयत्न किया है। ब्राह्मण, महाभारत, जैन, बौद्ध, मुसलमान और यहूदी कथाओं के साथ इसकी तुलना की है।[4] यही सूचना जैकोबी द्वारा सम्पादित हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्व पृ. 22 में दी गयी है।[5]

मधुबिन्दु दृष्टान्त का प्रारम्भिक रूप महाभारत का है। धृतराष्ट्र के शोक का निवारण करने के लिये विदुर ने इस दृष्टान्त द्वारा सघन संसार का चित्र उपस्थित किया है। दृष्टान्त को प्रारम्भ करते समय विदुर ने यह बात स्वीकार की है कि मैंगहन वन के उस स्वरूप का वर्णन करता हूँ जिसका निरूपण बड़े बड़े महर्षि करते हैं।[6] उनका यह कथ्य सूचित करता है कि महाभारत के पूर्व भी इस दृष्टान्त का उपयोग होता रहा है। उपनिषदों में यद्यपि मधुबिन्दु का यह स्वरूप तो नहीं मिलता, किन्तु मधु और मधुमक्खियों को उपमा का विषय अवश्य बनया गया है। आदित्य की मधुरूप में कल्पना[7], सद्-आत्मा ही सबका मूल है जैस मधुरस इत्यादि। हो सकता है, संसारसुख की मधुबिन्दु द्वरा उपमा देने की प्रेरणा यहीं से उद्भूत हुई हो। बाद में क्रमशः वह कथा का रूप धारण करती गयी हो। बौद्ध कथाओं में भी मधु-तृष्णा से सम्बन्धित अनेक कथायें है।[8]

महाभारत में मधुबिन्दु दृष्टान्त का कथा-मानक रूप इस प्रकार है:-

1. कोई ब्राह्मण यात्रा कर रहा था।
2. वह दुर्गम वन के दुर्गम प्रदेश में जा पहुँचा।
3. वह बन चारों ओर से जाल से घिरा हुआ था।
4. एक भयंकर स्त्री द्वरा भुजाओं से आवेष्ठित था।
5. तृण लता आदि से ढका हुआ एक कुंआ था।
6. ब्राह्मण उस कुंए में गिर पड़ा। लताओं में फंस जाने से वह नीचे नहीं गिरा।
7. ऊपर को पैर और नीचे को सिर किये हुए वह लटका रहा।
8. कुंए की तल में एक अजगर था।
9. मुखबन्ध पर छः मुख और 12 पैर वाला काला सफेद हाथी था।
10. वृक्ष की जिस शाखा में वह लटका था उसी की टहनियों पर मधु का एक छत्ता था।
11. मधुकी धाराओं को वह ब्राह्मण पी रहा था।
12. फिर भी वह अतृप्त था।[9]

दृष्टान्त का यह रूप आगे चलकर परिवर्तित और परिष्कृत हुआ है। इस पर विचार करने के पूर्व इस दृष्टान्त का स्पष्टीकरण महाभारतकार ने जो दिया है, उसे देख लेना आवश्यक है। इसमें दुर्गम वन महा संसार है, दुर्गम प्रदेश संसार की गहनता और सर्प विविध रोग। सीमा पर स्थित भयंकर नारी वृद्धावस्था है, कुंआ शरीर। अजगर काल मृत्यु है, ब्राह्मण द्वरा पकड़ी हुई

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लता जीविताशा (आयु)। हाथी सम्वत्सर है। उसके छः मुख छः ऋतुएं एवं बारह पैर 12 माह। दो चूहे दिन रात हैं। मधु मक्खियां कामनाएं है और मधु की धाराएं कामरस, जिसमें मानव डूब जाते हैं।[10] उपर्युक्त स्पष्टीकरण न केवल प्रतीकों की व्याख्या करता है किन्तु कुछ नयी सूचनायें भी देता है। स्पष्टीकरण में सर्पों को विविध रोग और चूहों को दिनरात का प्रतीक स्वीकारा है, जबकि उक्त दृष्टान्त में सर्पों और चूहों का उल्लेख तक नहीं है। इसी तरह की असंगति उक्त कथानक में भी है। हाथी को सफेद और काला दोनों रंगवाला कहा है।[11] इन असंगतियों से कुछ समभावनायें जन्मती हैं। यथाः-

(1) दृष्टान्त-अंश महाभारतकार ने किसी एक स्रोत से ग्रहण किया है और स्पष्टीकरण अंश किसी दूसरे स्रोत से। अथवा (2) दृष्टान्त अंश के श्लोकों के सम्पादन में कोई श्लोक छूट गया है, जिसमें सर्प और चूहों का भी उल्लेख रहा होगा।

साहित्तियक उल्लेख की दृष्टि से मधुबिन्दु अभिप्राय का उत्स महाभारत के इस प्रसंग को स्वीकारा जा सकता है, जब तक इस प्रसंग के किसी अन्य स्रोत का पता नहीं चलता। किन्तु मधुबिन्दु अभिप्राय के निर्माण में जो एक दार्शनिक विचार धारा निहित है, यदि उस पर विचार किया जाय तो इस अभिप्राय का उत्स बहुत प्राचीन ठहरता है।

इस अभिप्राय के निर्माण में इस विचारधारा का कि संसार में मेरू पर्वत के सदृश दुख और राई के दाने बराबर सुख है, प्रमुख योगदान है। पुनर्जन्म और मोक्ष को स्वीकारने वाले प्रायः सभी दर्शन इस बात को स्वीकार कर चलते हैं कि सांसारिक जीवन में जीव दुख का अधिक और सुख का कम अनुभव करता है। सांसारिक सुख अन्ततः दुखरूप ही हैं। शाश्वत सुख मोक्ष की प्राप्ति है। इस विचार धारा से मधुबिन्दु अभिप्राय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सन्दर्भ में इस अभिप्राय का उत्स निश्चित रूप से आरण्यक एवं ब्राह्मणों से होता हुआ वैदिक विचारधारा तक पहुँच जाता है।

सूक्ष्मता से विचार करने पर इस अभिप्राय का श्रमण विचारधारा से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है। वैदिक विचारधारा में संसार दुखरूप है, किन्तु सांसारिक सुखों की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। इसलिये वैदिक सन्यस्त-जीवन गृहस्थ सुखों से जुड़ा हुआ है जबकि श्रमण विचारधारा सन्यस्त जीवन में किसी भी गृहस्थ सुख को स्वीकार नहीं करती। इसीलिए उसके लिए सांसारिक दुख मेरू सदृश और सुख सर्षप दाने के बराबर है।[12] मधुबिन्दु अभिप्राय के रूपान्तरों में इन दोनों विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व हुआ है। महाभारत में कुंए का ब्राह्मण नाना दुःखों को सहता हुआ मधु की धाराओं का पान करता है[13], एक-दो बूंद मधु का नहीं। अतः वह मधुधाराओं के सदृश नाना सुखों के लिए सांसारिक दुःखों को सह भी सकता है, जबकि प्राकृत कथाओं के कूपनर को बड़ी प्रतीक्षा के बाद मधु की एक बूंद प्राप्त होती है।[14] अतः इतने से सुख का त्यागकर वह पूर्ण रूप से विरक्ति हो सकता है। अभिप्राय की यह फलश्रुति है। अतः विचारधारा के आधार पर मधु बिन्दु अभिप्राय श्रमण-परम्परा की प्राचीनता के साथ जुड़ जाता है।

विकास :

मधुबिन्दु-अभिप्राय की रूपान्तर-परम्परा निरन्तर विकसित होती रही है। यह एक इतना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित और प्रभावक रूपक रहा है कि धर्मगत और देशगत सीमाओं को लांघकर इसने विश्वयात्रा की है। इसके विकासक्रम को तीन क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं।
(1) साहित्यक (2) लौकिक और (3) कलागत प्रयोग।

साहित्यिक रूपान्तर :

मधुबिन्दु अभिप्राय के साहित्यक विकास का अर्थ केवल विभिन्न ग्रन्थों में उसका उल्लिखित होना नहीं है, बल्कि उसके साहित्थिक रूपान्तरों से है। चूंकि यहाँ अध्ययन का क्षेत्र प्राकृत-साहित्य तक ही सीमित है। अतः उसमें उल्लिखित मधुबिन्दु अभिप्राय के रूपान्तरों पर ही विचार हो सकेगा। अभी तक 1- वसुदेवहिण्डी 2- उपदेशमाला (धर्मदासगणि) 3- समाराइच्चकहा 4- धर्मोपदेशमालाविवरण (जयसिंहसूरि) 5. सुभाषितरत्नसंदोह 6- धर्मपरीक्षा (अभितगति) 7- धम्मपरीक्खा (हरिषेण) 8- बहत्कथाकोश 9- जम्बुचरियं (गुणपालमुनि) 10- परिशिष्टपर्वन् (हेमचन्द्र) 11- समरादित्य संक्षेप (प्रद्मसूरि) 12- सिरिजंबुसामिचरियं (गद्य, जिनविजय) 13- परिशिष्टपर्व (गद्य, शुभंकर विजय) 14- समरादित्यकेवलिनोरास (पद्मविजय) 15- श्री सज्जायमाला में मधुबिन्दु कथानक के संदर्भप्राप्त होते है। कुछ अन्य ग्रन्थों में इसकी सम्भावना होने पर भी ग्रन्थ उपलब्ध न होने से उन्हें खोजा नहीं जा सका। मधुबिन्दु की साहित्यिक सन्दर्भ की परम्परा इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी विस्तार पाने की अपेक्षा रखती है।[16]

उक्त ग्रन्थों में मधुबिन्दु दृष्टान्त क्रमशः साहित्यिक वर्णनों से युक्त और रूपान्तरित भी हुआ है। वसुदेवहिण्डी के सरल कथानक को समराहच्चकहा में साहित्यिक बनाया गया है। कूप अटवी आदि का वर्णन सांगोपांग किया गया है। अभिप्राय के साहित्यिक रूप धम्मपरीक्खा, सिरीजंबुसामिचरियं, परिशिष्टपर्व गद्य में भी प्राप्त होते हैं। उक्त सन्दर्भ ग्रन्थों में प्रमुख रूप से इस अभिप्राय के चार रुपान्तर प्राप्त होते हैं। यथा-

(1) वसुदेवहिण्डी में पथिक जंगली हाथी के भय से कुंए में गिरता है, जबकि समराइच्चकहा में तलवार लिए एक भयंकर राक्षसी का भय उपस्थित किया गया है। इस रुपान्तर के विषय में अन्य ग्रन्थ मौन हैं। सम्भवतः हरिभद्र की राक्षसी महाभारतकार की भयानक स्त्री का रूपान्तर है। इस रूपान्तर के कारण यहां एक यह सम्भावना और जन्म लेती है कि कहीं महाभारत में मधुबिन्दु दृष्टान्त का उल्लेख हरिभद्र के बाद का प्रक्षेपण तो नहीं है ? किन्तु इसमें कोई तथ्य दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि यदि महामारत का उल्लेख प्रक्षेपण होता तो वह भी मधुबिन्दु के नाम से होता, संसारगहन-दृष्टान्त के नाम से नहीं।

(2) प्रायः सभी सन्दर्भ ग्रन्थों में वनहस्थी का भय पथिक को दिखाया गया है और उसे मृत्यु का प्रतीक माना गया है। किन्तु बृहत्कथ कोश में वनहस्थी का स्थान बाघ ने ले लिया है। प्रस्तुत अभिप्राय के प्रतीकों का अध्ययन करते समय इस रूपान्तर पर विचार किया जा सकेगा।

(3) प्राचीन सभी सन्दर्भों में पथिक मधुबिन्दु की आशा में लटका हुआ रह जाता है, सभी दुःखों को सहन करता रहता है। किन्तु उसकी संकट-मुक्ति का कोई प्रयत्न किसी ग्रन्थकार ने नहीं किया है। जबकि बाद के सन्दर्भग्रन्थों में यह बात देखने को मिलती है। गद्य में लिखित परिशिष्टपर्व में यह कल्पना की गयी है कि यदि कोई विद्याधर या देव उस पथिक को सेकटों से छुड़ाना चाहे तो क्या वह मुक्त होना चाहेगा ?[17]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(4) और यह कल्पना सिरिजम्बूसामिचरियं में साकार हो गयी है। उसमें विद्याधर और विद्याधरी उस पथिक के संकट से द्रवित होते हैं और उसे संकटमुक्त करने का प्रयत्न करते है।[18]

लौकिक प्रयोग :

मधुबिन्दु अभिप्राय की विकास-यात्रा लोकमानस से गुजरी हुई प्रतीत होती है। क्योंकि इसका जो मूल कथानक है, वह शुद्ध लौकिक है। बाद में उसमें पुराण-कथा और सम्प्रदायकथा के तत्व सम्मिलित हुए हैं। तृष्णा से सम्बंधित अनेक लोक कथाएं प्रचलित हैं। पंचतन्त्र की कबूतरों की कहानी इससे अधिक सम्बन्धित है। आज भी लोक में शहद लिपटी तलवार का मुहावरा प्रचलित है। यह स्पष्ट रूप से मधुबिन्दु दृष्टान्त का लौकिक संक्षिप्तीकरण है। इसमें शहद मधुबिन्दु का प्रतीक है, तलवार के अन्तर्गत उक्त दृष्टान्त के सभी संकट आ गये हैं।

उक्त अन्तिम दो रूपान्तर, जिनमें विद्याधर व विद्याधरी की सहायता का उल्लेख है, दृष्टान्त के लौकिक विकास से ही सम्बन्धित हैं। प्रायः अधिकांश लौकिक कथाओं में हम पाते हैं कि जब कोई व्यक्ति अधिक कष्ट पा रहा होता है तो शिवपार्वती प्रकट होते है। पार्वती शिव से उस संकटस्त प्राणी को मुक्त करने का आग्रह करती हैं और शिव उस प्राणी को संकट मुक्त करते हैं।[19] सिरिजंबूसामिचरियं में विद्याधर और विद्याधरी का उल्लेख पूर्णरूप से शिव-पार्वती का रूपान्तर है। थामसन ने मोटिफ इन्डेक्स में धर्मगाथा- अभिप्राय के अन्तर्गत संसार के संकट नामक अभिप्राय का उल्लेख किया है[20] तथा शरत्चन्द्र मित्र ने बर्न महोदया के सत्तर कथा-मानक रूपों में तीन और भारत के कथा-मानक रूप जोड़े हैं, जिनमें एक 'शहद की बूंद' नामक कथा-मानक रूप भी है[21] इन दोनो उल्लेखों के विस्तृत-विवेचन इस समय उपलब्ध नहीं हो सके अन्यथा मधुबिन्दु अभिप्राय के लौकिक विकास पर कुछ और प्रकाश पड़ता।

कलागत प्रयोग :

भारतीय कला में सामान्य रूप से मानवीय रागात्मक वृत्तियों से सम्बधित कलाकृतियां अधिक पायी जाती हैं। क्योंकि कला का प्रयोग अधिकांश सौन्दर्य-भावना की तृप्ति के लिए होता है, भले ही उसके पीछे दार्शनिक चिंतन की एक निश्चित परम्परा विद्यमान रही हो। यत्र-तत्र आध्यात्म-चितन से संबंधित अनेक कलाकृतियां व चित्र आदि उपलब्ध होते हैं। जैन चित्रकला इस सन्दर्भ में अपनी निजी विशेषता रखती है। उसने धर्माश्रय और राजाश्रय पाकर आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक तथा प्राकृतिक रहस्यों का सूक्ष्म ढंग से उद्घाटन किया है।

जैन चित्रकला की इस व्यापकता के परिवेश में निश्चित रूप से मधुबन्दु अभिप्राय एकाधिक बार चित्रित हुआ होगा। मन्दिरों, उपासरों की भित्तियों, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों तथा उनके आवरणों पर मधुबिन्दु अभिप्राय का चित्रांकन उपलब्ध होने की अधिक सम्भवना है। यह अनेक जगह उपलब्ध है भी, किन्तु साधनहीनता और समयाभाव के कारण उनका मूल्यांकन यहाँ नहीं किया जा सका।

श्री अगरचन्दजी नाहटा के कला-भवन में एक पुस्तक-पट्टिका में मधुबिन्दु अभिप्राय चित्रित देखने को मिला। यह चित्र भितिचित्रों से पूर्व का एवं लगभग 18 वीं सदी का है। इसमें मधुबिन्दु

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टान्त के साथ ही भयानक बन का भी चित्रण है। बीकानेर स्थित जयचन्द्रजी के उपासरे में भी मधुबिन्दु का एक भित्ति चित्र देखने को मिला, जो लगभग अबसे 80 वर्ष पूर्व का है। चित्रकारश्री नथमल चाण्डक, जयपुर ने भी मधुबिन्दु अभिप्राय के चित्र प्रकाशित किये हैं, जो जैन श्रावकों के घरों पर लगे मिलते हैं। बीकानेर के आदिनाथ मंदिर में उनका एक चित्र देखने को मिला। चित्र का शीर्षक लोभ से मृत्यु दिया गया है। भित्ति-चित्रों से यह चित्र भिन्न है।

मधुबिन्दु अभिप्राय संगमरमर की कलाकृतियों में भी उत्कीर्ण हुआ है। राजस्थान के कुछ जैन-मन्दिरों की संगमरमर की पट्टियों में मधुबिन्दु दृष्टान्त उत्कीर्ण हुआ है।[22] सागर तथा आरा आदि स्थानों के मानस्तम्भों में भी इस अभिप्राय को चित्रित किया गया है। इस तरह अन्य अनेक कलागत सन्दर्भ मधु-बिन्दु अभिप्राय के उपलब्ध हो सकते हैं, जिनके स्वतन्त्र अध्ययन की आवश्यकता है। मधुबिन्दु के प्रतीक हस्ती वटवृक्ष आदि तो भारतीय कला के अभिन्न अंग हैं। अनेक जगह उनका चित्रण हुआ है।

अभिप्राय के प्रतीक :

प्रस्तुत अभिप्राय में बिम्बप्रतीकों द्वारा संसार-संकटों को प्रदर्शित किया गया है। दृष्टान्त के विभिन्न रूपान्तरों में कुछ प्रतीकों की योजना यथावत है, कुछ प्रतीकों में परिवर्तन है। यहां पर कुछ प्रमुख प्रतीकों पर विचार कर लेने से यह स्पष्ट हो जायगा।

1. **पथभ्रष्ट राही** - महाभारत में इसके लिखे ब्राह्मण को चुना गया है। प्राकृत कथाओं में एक सामान्य पुरुष है। ब्राह्मण की दरिद्रता एवं अतृप्तवृत्ति के कारण ही सम्भवतः महाभारतकार ने उसे दृष्टान्त का केन्द्रबिन्दु बनाया है। स्पष्टीकरण में ब्राह्मण किसका प्रतीक है, यह नहीं बताया गया। प्राकृत-कथाओं का पुरुष जीव का प्रतीक है। जिस तरह पुरुष बन में पथभ्रष्ट होकर इधर-उधर घूमता है, उसी प्रकार यह जीव अज्ञान-वश चारों गतियों के चक्कर लगाता है।

2. **वनहस्ती** - महाभारत में हाथी का स्वरुप ही विचित्र है और उसकी प्रतीक योजना भी। सम्भवतः समवत्सर, ऋतुओं एवं माह से सम्बन्ध बिठाने के लिये ही हाथी को 6 मुख, 12 पांव एवं श्वेत कृष्ण रंग वाला माना गया है।[23] प्राकृत रूपान्तरों में सर्वत्र हाथी को मृत्यु का प्रतीक स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य के लिए यह एक नई प्रतीक-योजना है।

भारतीय कला और साहित्य में हाथी का प्रतीक सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। कमल और हाथी के प्रतीकों के बिना कोई कलाकृति पूर्ण नहीं समझी जाती थी। प्रो. डा. नारवने ने 'द एलीफेन्ट एण्ड लोटसे' नामक पुस्तक में विस्तार से हाथी के प्रतीकों पर विचार किया है, किन्तु कहीं भी उन्होंने हाथी को मृत्यु का प्रतीक नहीं माना। सामान्य रूप से भी हाथी पराक्रम, विशालता एवं शुभ का प्रतीक रहा है। भगवान् बुद्ध का प्रतीक हाथी को मानकर उसकी अर्चना की जाती रही है। जैन-साहित्य में माता के स्वप्नों में हस्ती-दर्शन, तीर्थंकर के चिन्ह में हस्ती, इन्द्र और ऐरावत हस्ती, अनेकान्त-दर्शन में हस्ती और अंधे इत्यादि अनेक जगह हस्ती प्रतीक का प्रयोग हुआ है। किन्तु कहीं भी उसे मृत्यु एवं अशुभ का प्रतीक नहीं माना गया। इस अभिप्राय में-वह मृत्यु का प्रतीक कैसे हो गया, यह विचारणीय है।

प्रस्तुत अभिप्राय के अधिकांश रूपांतरों ने हस्ती को मृत्यु का प्रतीक माना है। मृत्यु को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनिवार्य स्वीकार किया गया है। उसके हाथों से बचकर जीव कहीं भाग नहीं सकता। मृत्यु अंधकारमय और व्यापक है। सम्भवतः इस विचारधारा ने ही हाथी को मृत्यु का प्रतीक मानने के लिए मजबूर किया हो। जंगल के अन्य सभी पशुओं में हाथी सूंड़ के कारण विशिष्ट है। उसकी सूंड मृत्यु की दीर्घ भुजा का प्रतीक है, विशालता मृत्युकी व्यापकता का तथा कृष्णवर्ण मृत्यु के अंधकार का। माघ ने भी एक जगह अंधकार की उपमा हाथी से दी है।[24] अतः हाथी को मृत्यु का प्रतीक स्वीकारना असंगत नहीं है।

दूसरी बात हाथी को जहाँ कहीं शुभ माना गया है, प्रायः वहाँ श्वेतहस्ती का उल्लेख है, कृष्ण का नहीं। अतः मृत्यु को जीतने वाले बुद्ध का प्रतीक यदि श्वेतहस्ती को स्वीकार किया गया है तो कोई असंगति नहीं है। भारतीय संस्कृति व साहित्य में हस्ती के अन्य प्रसंग भी उसके मृत्यु-प्रतीक के साथ जुड़े हुए हैं। गज और ग्राह का प्रसंग इस बात का रूपक है कि मृत्यु कितनी भी बलशाली क्यों न हो उस पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। किसी नायक विशेष द्वारा हाथी को वश में करने के प्रसंग भी मृत्यु-विजय की ओर संकेत करते हैं। कमल और हस्ती का संयोग बहुत प्रचलित है। जीवन और मृत्यु के ये स्पष्ट प्रतीक हैं। सरोवर में खिलता हुआ कमल जीवन और उसको नष्ट कर डालने वाला हस्ती मृत्यु है।

इस अभिप्राय के महाभारत रूपांतर में जो हस्ती को सम्वत्सर का प्रतीक माना है, प्रकारांतर से वह भी मृत्यु से जुड़ा हुआ है। जीव की मृत्यु आयु समाप्त होने पर होती है। आयु को क्षीण करने वाला समय है, जो वर्ष, ऋतु एवं मास आदि में विभक्त है। अतः हस्ती को मृत्यु का प्रतीक स्वीकारना असंगत प्रतीत नहीं होता। जिस वृहत्कथा कोश वाले रूपांतर में हाथी के स्थान में व्याघ्र का प्रयोग हुआ है, वहाँ मृत्यु का भयावह रूप ही स्पष्ट हो सका है।

3. वटपादप - महाभारत में जंगल के सामान्य वृक्षों का उल्लेख है, जबकि कुछ प्राकृत रूपान्तरों में वटवृक्ष विशेष का। इसीकी जटा अथवा जड़ को पकड़ कर पथिक कुंए में लटका रहता है। वटवृक्ष को मोक्ष का प्रतीक कहा है। दिषयातुर मनुष्य इस पर नहीं चढ़ सकता और न मृत्यु ही इसका कुछ बिगाड़ सकती है। वटपादप को मोक्ष का प्रतीक मानना और हाथी का उसके सम्मुख शान्त रहना इस सम्भावना को जन्म देता है कि शायद यह बौद्ध धर्म के बोधिवृक्ष और हस्ती का रूपान्तर है। अनेक जगह बोधिवृक्ष का हस्ती द्वारा अभिवादन करने के उल्लेख मिलते है।[25]

4. कूप :- मधुबिन्दु अभिप्राय के सभी रूपान्तरों में कुंए का उल्लेख है। महाभारत में कूप ही प्रधान है। वहाँ कुंआ शरीर का प्रतीक है, उसमें गिरने वाला ब्राह्मण जीव का। कुंए में ब्राह्मण की उल्टे हो लटकने की स्थिति गर्भ-स्थिति की द्योतक है। विन्टरनित्स ने सम्भवतः मधुबिन्दु अभिप्राय के इसी रूप को सर्व प्रथम देखा था, इसीलिए उन्होंने इस का अनुवाद main in the well 'कूपनर' किया है।[26] इस शब्द द्वारा संसार के संकटों की अभिव्यक्ति तो होती है, किन्तु इसके लिए मधुविन्दु शब्द पूर्ण सार्थक है।

मधुबिन्धु अभिप्राय की उपर्युक्त व्यापकता एवं अर्थवत्ता हमें यह सोचने के लिए मजबूर करती है कि प्राकृत कथाओं में ऐसे अनेक अभिप्रायों का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो इससे कथाओं का हार्द स्पष्ट होगा और उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी उभर करा सामने आ सकेगी, जो भारतीय कथाओं के महत्व को विश्वकथा साहित्य में दुगना कर देगी। भारतीय कथा-साहित्य में प्राकृत कथा साहित्य की समृद्धता को देखते हुए यह कार्य किसी एक विद्वान् के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वश का नहीं है। इसके लिए सामूहिक और योजना-बद्ध प्रयत्न अपेक्षित है। पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का अनुकरण करने की बजाय यदि उनकी क्षमता और कार्य-पद्धति का अनुकरण किया जाय तो अपने साहित्य का मूल्यांकन हमें दूसरों की आंखें से नहीं देखना पड़ेगा।

सन्दर्भ

1. वाइड अवेकस्टोरीज मे दिए गये नोट्सः ओसन आव द स्टोरीज, भाग 1-10।
2. वसुदेवहिण्डी कथोत्पत्ति 8 एवं ज्ञाताधर्मकथा।
3. हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर विन्तरनित्स पार्ट-1 पृ. 408
4. वही, पृष्ठ 409।
5. प्राकृत साहित्य का इतिहास - डा. जगदीशचन्द्र
6. यथा संसारगहनं बदन्ति महर्षिभिः स्त्रीपर्व 5-2
7. छान्दोग्योपनिषद् (3-2 एवं 6-9)
8. वतमिगजातक (2-42), गुम्बियजातक (3-366) आदि ।
9. स्त्रीपर्व, अ 5, श्लोक 1-24।
10. वही, अ.6 श्लोक 1-14
11. महाभारत अ.5, श्लोक 14
12. परिशिष्ट पर्व 2 -190।
13. तेषं मधूनां वहु धारा प्रस्रवते तदा।
    आलम्बमानः स पुमान् धारां पिवति सर्वदा।।
14. बातविधूया महुबिन्दू तस्स पुरिसस्स केई मुहमाविसंति, ते च आसाएइ। बसुदेवहिंडी, पृ.8।
15. (1) कथोत्पति, पृष्ठ 8। (2) द्वितीय विश्राम (3) द्वितीय भव (4) 72 वीं गाथा (5) गाथा 94। (6) 2.5.21। (7) 3, 84। (8) 92 कथानक (9) सांतवां उद्देश्य (10) पद्य 2, 90-218। (11) श्लोक 321-44। (12) गद्य पृ. 17-18 (13) पृ. 38। (14) सातवीं ढाल। (15) मधुविन्दुयानि सज्जाय।
16. विशेषरूप से दृष्टव्य -
    (1) हिस्टरी आव इण्डियन लिटरेचर 1 पृ. 408
    (2) श्री जैनसाहित्य-प्रकाश, वर्ष 12, अं. 5, पृ. 131
    (3) बृहत्कथाकोश, ए.एन. उपाध्ये पृ. 388।
17. परिशिष्टपर्व (गद्य-शुभंकरविजय) पृ. 35-39
18. तेण समरणं कोवि विज्जाहरे सभारिए विमाणट्ठिए विज्जाए अंबरतलं गच्छमाणे वडपायवोपरि उवागए। पृ. 17-18
19. लोक साहित्य विज्ञान- डा. सत्येन्द्र, संकटभंजन अभिप्राय।
20. मोटिफ-इन्डेक्स- धर्मागाथा-अभिप्राय ए- 1000-ए. 1099
21. लोक साहित्य विज्ञान, पृ. 244
22. श्री नीरज जैन, सतना की सूचना के आधार पर।
23. षड्वक्त्रः कुन्जरो राजन् स तु सम्वत्सरः स्मृतः।
    मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः ।। -6, 10-11
24. शिशुपालबध, 4.20
25. एलिफेन्ट एण्ड लोटस, पृष्ठ, 8
26. हिस्टरी आफ इण्डियन लिट्रेचर, पृ.408

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. प्रेम सुमन जैन

जन्म : 1 अगस्त, 1942, सिहूँड़ी (जबलपुर)

शिक्षा : कटनी, वाराणसी, वैशाली एवं बोधगया में संस्कृत, पालि, प्राकृत, जैनधर्म तथा भारतीय संस्कृति का विशेष अध्ययन। 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर पी-एच. डी.। अब तक 21 पुस्तकों का लेखन-सम्पादन एवं लगभग 125 शोधपत्र भी प्रकाशित।

सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष पद पर विगत 13 वर्षों से कार्यरत। देश-विदेश के विभिन्न सम्मेलनों में शोधपत्र वाचन। 1984 में अमेरिका एवं 1990 में यूरोप-यात्रा के दौरान विश्वधर्म सम्मेलनों में जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व एवं जैनविद्या पर विभिन्न व्याख्यान सम्पन्न। सम्प्रति-प्राकृत, अपभ्रंश की प्राचीन पाण्डुलिपियों के सम्पादन-कार्य में संलग्न।

प्राकृत-अध्ययन प्रसार संस्थान, उदयपुर के मानद निदेशक एवं त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'प्राकृतविद्या' के सम्पादक।

सम्पर्क :
29, सुन्दरवास (उत्तरी)
उदयपुर-313001 (राज०)

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-चतुष्टय (डॉ. प्रेम सुमन जैन)

☐ **जैन धर्म और जीवन–मूल्य**

श्रमणधर्म की परम्परा, अनेकान्त, समता, अहिंसा, अपरिग्रह, स्वाध्याय आदि जैनधर्म के जीवन–मूल्यों पर वर्तमान सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डालने वाली चिंतन–प्रधान पुस्तक। रु. 90.00

☐ **प्राकृत-कथा साहित्य परिशीलन**

प्राकृत कथा साहित्य के उद्भव एवं विकास, भेद-प्रभेद, प्रतीक कथाओं, प्रतिनिधि कथा-ग्रन्थों एवं प्रमुख अभिप्रायों (Motifs) पर अभिनव सामग्री प्रस्तुत करने वाली शोधपूर्ण पुस्तक। रु. 95.00

☐ **प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृति**

भारतीय भाषाओं के विकास में प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं का क्रम एवं योगदान, प्राकृत के भेद-प्रभेद, भारतीय भाषाओं के साथ सम्बन्ध, प्रमुख भाषाविदों एवं ग्रन्थकारों का अवदान, सांस्कृतिक मूल्यांकन और लोक संस्कृति को उजागर करने वाली पुस्तक। रु. 95.00

☐ **जैन साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका**

जैन साहित्य का ऐतिहासिक एवं सामाजिक महत्व, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, संस्कृत की जैन रचनाओं और कवियों तथा बिभिन्न ग्रन्थों के वैशिष्ट्य को रेखांकित करने वाली पुस्तक। रु. 95.00

संघी ... पुर

JinShasan

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org